Received
26/9/96

श्रुतादर्श

प. पू. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा.
जि. गांधीनगर, पिन-382009.

२९

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

जुलाई १९९६

शोधादर्श

२९

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
जुलाई १९९६

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
मन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन : नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती—श्री रमा कान्त जैन १३३
२. सम्पादकीय : वीर शासन जयन्ति —श्री अजित प्रसाद जैन १३६
३. श्री महावीर वचनामृत १४०
४. व्यसन-जाल —डा० ज्योति प्रसाद जैन १४१
५. क्रान्तिकारी अर्जुन लाल सेठी —डा० अमर पाल सिंह १४४
६. पार्श्वनाथ विषयक प्राकृत साहित्य —डा० ऋषभ चन्द्र जैन १५४
७. सक्लेश और विशुद्धि —प्रो० एल० सी० जैन १५६
८. चर्चा-समाधान —श्री रमा कान्त जैन १६३
९. शोध-सार : पंचास्तिकाय का समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन —डा० (श्रीमती) जैनमती जैन १६७
१०. पर्यावरण और जीव दया —डा० शैलनाथ चतुर्वेदी १७१
११. इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन स्मृति दिवस १७३
१२. साहित्य सत्कार :
अजिताश्रम पाठावली; ग्वालियर गौरव गोपाचल;
पार्श्वनाथ चरित्र; विश्व के कीर्ति-स्तम्भ नव गजरथ;
सागर मन्थन; वाग्दीक्षा-स्वरूप एवं महत्व; कीर्ति-स्तम्भ;
विद्याष्टकम्; परम पूजांजलि; संत-सौरभ; गोलापूर्व जैन समाज :
इतिहास एवं सर्वेक्षण —श्री अजित प्रसाद जैन १७५
क्रान्तिदूत —श्री रमा कान्त जैन १८४
देह से विदेह की ओर —आचार्य शिव चन्द्र शर्मा १८४
हिन्दी भाषा —डा० कमल सिंह १८६
भजन-मणिमाला; भावक एवं चिन्तक
आचार्य परशुराम चतुर्वेदी; अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी
काव्य और कबीर ; पञ्चाल ; India as known
to Haribhadra Suri —डा० शशि कान्त १८७
१३. समाचार विमर्श —श्री अजित प्रसाद जैन
सम्मेद शिखर पर निर्माण कार्य १९२
मांगी-तुंगी पर पंच कल्याणक व आचार्य श्री की अवमानना १९२

	नवोदित तीर्थ क्षेत्र	१६४
	साध्वाचार के बदलते आयाम–यत्र तत्र सर्वत्र	१६७
१४.	अभिनन्दन	२०३
१५.	समाचार विविधा	२०४
१६.	आभार	२०६
१७.	पाठकों की दृष्टि में	२०६

मूल्य १५ रु०

वार्षिक शुल्क ४० रु० (मनीआर्डर द्वारा प्रेष्य)

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्‌बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— सम्पादक मण्डल

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किया जाना चाहिए। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : उप सचिव, उ० प्र० शासन (अ. प्रा.)
मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

डा० अमर पाल सिंह : सूचना निदेशक, भारत सरकार (अ. प्रा.)
ए-१/८, सेक्टर-बी, बसन्त बिहार, अलीगंज,
लखनऊ-२२६०२०

डा० ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार' : व्याख्याता, प्राकृत, जैन शास्त्र और
अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली-८४४१२८

डा० कमल सिंह : अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सनातन धर्म
महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर-२५१००१

डा० ज्योति प्रसाद जैन (स्व०) : विश्व-विश्रुत विद्वान

डा० (श्रीमती) जैनमती जैन : प्राध्यापिका, जैन बाला विश्राम उच्च
विद्यालय, आरा-८०२३०१

श्री रमा कान्त जैन : उप सचिव, उ. प्र शासन (अ. प्रा.)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

प्रो० एल० सी० जैन : दीक्षा ज्वैलर्स, ५५४, सर्राफा,
जबलपुर-४८२००२

आचार्य शिव चन्द्र शर्मा : वयोवृद्ध साहित्य समीक्षक
११, गांधी कालोनी, सहारनपुर-२४७००१

डा० शैल नाथ चतुर्वेदी : प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन
भारतीय इतिहास, गोरखपुर विश्वविद्यालय (अ.प्रा.
५३, खुर्शेदबाग, लखनऊ-२२६०१८

डा० शशि कान्त : विशेष सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

शोधादर्श-२९

वीर निर्वाण संवत् २५२२ जुलाई १९९६ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

मुनिं सिद्धं प्रणम्याहं नेमिचन्द्रं जिनेश्वरम् ।
टीकां गोम्मटसारस्य कुर्वे मन्दप्रबोधिकाम् ॥१॥

-अभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती : **मन्दप्रबोधिका टीका** (१२७५ ई०)

भावार्थ–जिनेश्वर, मुनि, सिद्ध और नेमिचन्द्र को प्रणाम कर मैं गोम्मटसार की मन्दप्रबोधिका टीका रच रहा हूँ।

नेमिचन्द्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणम् ।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः ॥१॥

–भट्टारक नेमिचन्द्र : **जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका** (१५१५ ई०)

भावार्थ–जिन अर्थात् जिनेन्द्र को, सिद्ध को, नेमिचन्द्र को और श्री ज्ञानभूषण को नमस्कार कर कर्णाटवृत्ति के आधार पर गोम्मटसार की यह वृत्ति (टीका) की जा रही है।

सिद्धान्तामृतसागरं स्वमतिमन्थक्ष्माभृदालोडय मध्ये
लेभेऽभीष्टफलप्रदानपि सदा देशीगणाग्रेसरः ।
श्रीमद् गोम्मट-लब्धिसारविलसत् त्रैलोक्यसारामर-
क्ष्माजश्रीसुरधेनुचिन्तितमणीन् श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥६३॥

–बाहुबलिचरित

भावार्थ–देशीगण में अग्रणी श्री नेमिचन्द्र मुनि ने सिद्धान्त रूपी अमृत-सागर का अपनी मति से मन्थन और विलोड़न करके सदा

अभीष्ट फल प्रदान करने वाले अमर, कामधेनु और चिन्तामणि स्वरूप श्रीमद् गोम्मटसार, लब्धिसार तथा त्रैलोक्यसार को प्राप्त किया, अर्थात्, इनका प्रणयन किया ।

उपर्युक्त प्रथम दो श्लोकों में टीकाकारों ने जिन नेमिचन्द्र को सादर नमस्कार किया है, वह **गोम्मटसार** के कर्ता नेमिचन्द्र हैं । **बाहुबलिचरित** के उपर्युक्त श्लोक से विदित होता है कि वे देशीगण के मुनि थे और उन्होंने **गोम्मटसार, लब्धिसार** तथा **त्रैलोक्यसार** नामक सिद्धान्त ग्रन्थों का प्रणयन किया था । **त्रैलोक्यसार** की अन्तिम गाथा—

इदिणेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण ।
रईओ तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया ।।

से विदित होता है कि वे अभयनंदि के शिष्य थे । **गोम्मटसार-कर्मकाण्ड** में उन्होंने अभयनंदि के साथ-साथ इन्द्रनन्दि, कनकनन्दि और वीरनन्दि का गुरुवत सादर उल्लेख किया है ।

षट्खण्डागम आदि सिद्धान्त ग्रन्थों में पारंगत होने के कारण नेमिचन्द्र 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' विरुद से अलंकृत थे । **त्रैलोक्यसार** में उन्होंने, जैन मान्यतानुसार, तीनों लोकों का विशद विवेचन किया है । **लब्धिसार** में मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में साधक पाँच आध्यात्मिक उपलब्धियों पर प्रकाश डाला है । **गोम्मटसार**, अपरनाम **पञ्चसंग्रहशास्त्र** व **पञ्चसंग्रहप्रपञ्च**, के 'जीवकाण्ड' और 'कर्मकाण्ड' नामक दो खण्ड क्रमशः ७३४ और ९७२ गाथाओं में निबद्ध हैं । **महाकर्मप्रकृतिप्राभृत** से उद्धृत प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ के जीव स्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्ध आदि छह खण्डों में विवेचित जीवादिक विषयों का सार रूप में इसमें विवेचन है, और **षट्खण्डागम** पर वीरसेन स्वामी की **धवला टीका** पर यह आधारित है । इनके अतिरिक्त कषायों के शमन पर **क्षपणसार** की रचना उन्होंने की थी । **कर्म-प्रकृति** (कदाचित **कर्मकाण्ड** का संक्षिप्त रूप) भी उनकी कृति कही जाती है । कुछ विद्वान **द्रव्य-संग्रह** की रचना

का श्रेय भी उन्हें देते हैं। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की कृतियाँ प्राकृत भाषा में हैं।

गोम्मटसार का रचनाकाल डा० ज्योति प्रसाद जैन ने **जीवकाण्ड** पर अपने सम्पादकीय में अन्तर्साक्ष्यों और बहिर्साक्ष्यों के आधार पर ९८३-९८४ ई० अनुमानित किया है। इस ग्रन्थ पर रची गई प्रमुख टीकाएं पांच हैं–(१) चामुण्डराय द्वारा उसी काल में कन्नड में रची **वीरमार्त्तण्डी टीका** जो अब अनुपलब्ध है; (२) अभयचन्द्रसूरि सिद्धांतचक्रवर्ती द्वारा संस्कृत में रचित **मन्दप्रबोधिका टीका**; (३) केशववर्णी द्वारा संस्कृत मिश्रित कन्नड में रचित **कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिका**; (४) केशववर्णी की टीका के आधार पर भट्टारक नेमिचंद्र (१५१५ ई०) द्वारा चित्तौड़ में संस्कृत में रचित **जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका**; और (५) १७६१ ई० में जयपुर में पं० टोडरमल द्वारा ढूंढारी भाषा में रचित **सम्यक्ज्ञान-चन्द्रिका टीका**।

विवेच्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती पश्चिमी गंग नरेश मारसिंह द्वितीय (९६१–९७४ ई०) और राचमल्ल चतुर्थ (९७५–९८४ ई०) के सुयोग्य सेनापति एवं महामात्य चामुण्डराय, जिन्हें श्रवणबेलगोला में विन्ध्यगिरि पर्वत पर विश्व के आश्चर्यों में परिगणित बाहुबलि स्वामी की ५७ फुट ऊँची मूर्ति को निर्माण कराने का श्रेय है, के समकालीन व कदाचित् उनके बालसखा थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों में चामुण्डराय का उल्लेख उनके घरेलू नाम 'गोम्मटराय' से ही किया है। चामुण्डराय नेमिचन्द्र को गुरुवत मानते थे और नेमिचन्द्र भी अपने इस बालसखा को उतना ही स्नेह और सम्मान देते थे, तभी चामुण्डराय की प्रेरणा से प्रणीत अपने सिद्धान्त ग्रन्थ का नाम उन्होंने **गोम्मट संग्रह, गोम्मटसूत्र,** व **गोम्मट संग्रह सूत्र** अभिसूचित किया जो अब **गोम्मटसार** के नाम से विख्यात है। कहा जाता है कि श्रवणबेलगोला में बाहुबलि मूर्ति की प्रतिष्ठा के उपरान्त उक्त मूर्ति की देखभाल का दायित्व चामुण्डराय ने इन्हें ही सौंपा था और श्रवणबेलगोला मठ में रहते हुए इन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की थी।

—रमा कान्त जैन

सम्पादकीय

वीर शासन जयन्ति

५५७ वर्ष ईसा पूर्व की वैशाख शुक्ला १० के दिन का अन्तिम प्रहर, ऋजुकूला नदी के निकट जृम्भिक ग्राम के बाहर जीर्ण उद्यान के पास, श्यामक नामा गाथापति के खेत के किनारे लगे शाल वृक्ष के नीचे, महान साधक श्रमण वर्द्धमान महावीर शुक्ल ध्यान में लीन थे कि यकायक उनका अन्तर निर्मल केवलज्ञान के आलोक से दैदीप्यमान हो गया। उनके आत्मिक गुणों को आच्छादित करने वाले ज्ञानावरणादि सभी कर्मों का पूर्ण क्षय हो गया। उनके १२ वर्ष साढ़े ५ मास की कठोर मौन एकाकी साधना सफली भूत हुई। वे परम वीतराग अर्हत् परमेष्ठी, जिन, आप्त, सार्व, प्राणिहितोपदेशी जगद्गुरु हो गये। उनका तीर्थंकरकाल क्रिया रूप में प्रारम्भ होने का समय आया।

अनादि काल से परम्परा चली आ रही है कि तीर्थंकर महाप्रभु को जिस दिन केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, उनकी प्राणिकल्याण की अति उत्कट भावना के परिणाम स्वरूप उनके भव्य समवशरण की रचना इन्द्रादिक देवों द्वारा उसी दिन को जाती है तथा भगवान का सर्व-हितकारी उपदेश होता है, धर्म-तीर्थ की स्थापना होती है। तीर्थंकर की दिव्य देशना कभी व्यर्थ नहीं जाती तथा एकाधिक भव्य जन संबोधि को प्राप्त कर भगवान के पाद मूल में संयम ग्रहण करते हैं, सर्व विरति महाव्रत धारण करते हैं।

भगवान महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भी जृम्भिक ग्राम के बाहर जीर्ण उद्यान में भगवान के भव्य समवशरण की रचना तो हुई, और भगवान उसमें विराजे भी, लेकिन उनकी दिव्य ध्वनि प्रस्फुटित नहीं हुई क्योंकि इसमें जुटी परिषद अभाविता थी। उसमें भव्य मानवों, संयम ग्रहण करने योग्य मनुष्यों, की उपस्थिति न थी। भगवान ग्रामानुग्राम विहार करके पंच-शैलपुर राजगृह पहुँचे तथा विपुलाचल पर्वत पर विराजमान हो गए।

भगवान की दिव्य ध्वनि न खिरने से इन्द्र को चिन्ता हुई। अवधिज्ञान से उसने ज्ञात किया कि गणधर के अभाव में भगवान का उपदेश नहीं हो रहा है। उपयुक्त पात्र की खोज में लगे इन्द्र का ध्यान उस समय के प्रकाण्ड विद्वान इन्द्रभूति गौतम की ओर गया।

उन दिनों पावापुर नगर (मध्यम पावा) में आर्य सोमिल के द्वारा एक विराट यज्ञ का आयोजन किया हुआ था जिसका पौरोहित्य इन्द्रभूति गौतम सहित दस और वेदज्ञ महापंडित कर रहे थे। इन्द्र ने यज्ञ स्थल पर एक जिज्ञासु शिष्य के रूप में जाकर इन्द्रभूति गौतम से विनयपूर्वक अभिवादन करके कहा, "आचार्य ! मेरे गुरू ने मुझे एक गाथा सिखाई थी तथा उसके बाद ही वे मौन में चले गए। उस गाथा का अर्थ मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आ रहा है। अतः आप कृपा कर समझा दीजिए।" इन्द्रभूति ने कहा, "कोई भी गाथा हो, अर्थ तो उसका मैं तुम्हें समझा दूंगा पर अर्थ समझ जाने पर तुम्हें मेरा शिष्यत्व स्वीकार करना होगा।" इन्द्र ने यह शर्त सहर्ष स्वीकार की तथा निम्न गाथा प्रस्तुत की—

पंचेव अस्थिकाया, छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा, सहेउओ बंध-मोक्खो य।

(**षट्खण्डागम**, पु० ९, पृष्ठ १२९)

इंद्रभूति इस गाथा को सुनकर असमंजस में पड़ गए। उनकी समझ में नहीं आया कि पंचास्तिकाय, षट् जीवनिकाय तथा अष्ट प्रवचन मात्राएं क्या है, वेद-उपनिषदों में तो इनका कोई उल्लेख मिलता नहीं। शिष्य वेशधारी इंद्र से उन्होंने कहा, "तुम मुझे अपने गुरू के पास ले चलो, मैं उनसे शास्त्रार्थ करूंगा और फिर मैं तुम्हें इसका अर्थ समझाऊंगा।" इंद्र तो यह चाहते ही थे।

समवशरण के बाहर मान-स्तम्भ के दर्शन करते ही महापंडित इंद्रभूति गौतम का अपने अगाध ज्ञान का गर्व गलित हो गया। वे पूर्ण विनय के साथ भगवान के समक्ष उपस्थित हुए तथा उनसे अपनी सभी मनोगत शंकाओं का सम्यक् समाधान पा कर वे अपने शिष्य

परिकर सहित प्रवृजित हो गये—भगवान के प्रथम शिष्य हुए, प्रथम गणधर हुए। यद्यपि इंद्रभूति गौतम विख्यात महापंडित थे तथा आयु में भगवान से १० वर्ष ज्येष्ठ थे, भगवान के ज्ञान के समक्ष वे अपने को सदा बालक ही मानते रहे।

उसी दिन आर्य सोमिल के यज्ञ की पुरोहिताई कर रहे अन्य दस महापंडित (अग्निभूति, वायुभूति, आर्य व्यक्त, सुधर्मा, मंडिन, मोर्य पुत्र, अकम्पित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास) भी अपनी शंकाओं का सम्यक् समाधान पाकर अपने शिष्य परिकर सहित भगवान से प्रवृजित हुए। ये ग्यारह महापंडित भगवान के प्रमुख शिष्य एवं गणधर हुए। इस प्रकार एक ही दिन में ४,४०० भव्य आत्माओं ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। यह शुभ दिन आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा थी तथा लोक में यह गुरु पूर्णिमा के नाम से विख्यात हुई।

गुरु पूर्णिमा का पर्व जैन एवं जैनेतर धर्मावलम्बियों में भी गुरू भक्ति के लिए समर्पित है। मुनि दीक्षा व व्रत संयम ग्रहण करने के लिए यह सर्वोत्कृष्ट दिन आज भी माना जाता है। बालकों को विद्यारम्भ कराने के लिए यह दिन शुभ माना जाता है। अब से ७०-८० वर्ष पहिले तक जैन पाठशालाओं में पंडित जी पाटी पर "ॐ नमः सिद्धम्" लिख कर तथा जैनेतर पाठशालाओं में "श्री गणेशाय नमः" लिख कर बालक को विद्यारम्भ कराते थे जिसका प्रकारान्तर से अर्थ गणाधिपति श्री इन्द्रभूति गौतम को नमस्कार करना ही होता है।

आषाढ़ी पूर्णिमा के अगले दिन श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के प्रातःकाल मनोरम विपुलाचल पर्वत पर इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर जगद्गुरू सर्वज्ञ भगवान महावीर स्वामी अपने ग्यारह गणधरों सहित समवशरण में विराजमान हुए तथा उनकी सर्व जन हिताय प्रथम दिव्य देशना हुई जिसे गौतम आदि गणधर देवों ने अर्थ रूप में ग्रहण कर शब्द रूप द्वादशांग श्रुत निबद्ध किया। राजकुमारी चन्दना ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और वे भगवान के आर्यिका संघ

की प्रमुखा बनीं। मगधराज श्रेणिक भी सपरिवार एवं सामन्तों सहित भगवान का दिव्य उपदेश सुनने के लिए समवशरण में उपस्थित हुए तथा वे भगवान के मुख्य श्रोता हुए। अभय कुमार, शंख, शतक आदि ने श्रावक धर्म स्वीकार किया तथा महारानी चेलना, सुलसा आदि ने श्राविका के व्रत स्वीकार किये। इस प्रकार भगवान के चतुर्विध धर्म संघ की स्थापना हुई। धर्म तीर्थ की स्थापना हुई। धर्म-चक्र का प्रवर्तन प्रारम्भ हुआ।

भगवान महावीर स्वामी की प्रथम देशना के संबंध में श्वेताम्बर परम्परा थोड़ा भिन्न है। उसके अनुसार देवताओं ने वैशाख शुक्ला दशमी को ही केवलज्ञान स्थल के समीप भव्य समवशरण की रचना की। भगवान समवशरण में विराजे तथा उसमें मनुष्यों की उपस्थिति भी हुई किन्तु उनमें सर्वविरति महाव्रत ग्रहण करने की क्षमता वाला कोई भव्यात्मा नहीं था। यह जानते हुए भी कल्प समझ कर भगवान ने कुछ देर उपदेश दिया किन्तु सर्वविरति रूप महाव्रत ग्रहण करने की दृष्टि से उस प्रथम देशना का परिणाम शून्य रहा। वह देशना अभाविता परिषद के समक्ष हुई थी। (दृष्टव्य, आचार्य गुणचन्द्र : **महावीर चरियम,** प्रस्ताव ७)। यह एक अभूतपूर्व घटना थी क्योंकि तीर्थंकर का उपदेश कभी व्यर्थ नही जाता। इसे इस अवसर्पिणी का एक अछेरा (आश्चर्य) ही माना जाता है।

भगवान वैशाख शुक्ला दशमी को ही मज्झम-पावा पधार गए तथा नगर के बाहर महासेन वन में उनके भव्य समवशरण की रचना हुई। आर्य सोमिल के विराट यज्ञ की पुरोहिताई कर रहे इन्द्रभूति गौतम आदि महापंड़ितों ने जब विशाल जन समूह को भगवान की वन्दना एवं उपदेश श्रवण के लिए समवशरण स्थल की ओर जाते देखा तो उत्सुकतावश तथा शास्त्रार्थ करने की इच्छा से वे भी वहाँ गए तथा अपनी मनोगत शंकाओं का सहज ही सम्यक् समाधान प्राप्त कर उन्होंने अपने विशाल शिष्य समुदाय सहित सर्वविरति रूप महाव्रत स्वीकार किए, भगवान का शिष्यत्व ग्रहण

किया। अगले दिन वैशाख शुक्ला एकादशी को ही भगवान की प्रथम देशना हुई। उसके बाद भगवान साधु परिवार सहित ग्रामानुग्राम पद विहार करते हुए राजगृह पहुँचे तथा नगर के बाहर गुणशील चैत्य में विराजमान हुए। वहीं उनके भव्य समवशरण की रचना हुई तथा श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को उन्होंने केवलि काल के अपने प्रथम चातुर्मास की स्थापना की।

भगवान का प्रथम चातुर्मास राजगृह में ही हुआ, इस पर दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में मतैक्य है, अन्तर केवल इतना है कि जहाँ दिगम्बर परम्परा समवशरण की रचना विपुलाचल पर्वत पर मानती है, जहाँ भव्य समवशरण मन्दिर का निर्माण हुआ है, श्वेताम्बर परम्परा राजगृह नगर के बाहर स्थित गुणशील चैत्य में मानती है जिस स्थल की पहचान कर स्व० उपाध्याय अमर मुनि जी ने सत्तर के दशक में वीरायतन की स्थापना की।

इस प्रकार अन्तिम तीर्थंकर सर्वज्ञ महाप्रभु भगवान महावीर के धर्म शासन का प्रारम्भ हुआ। धर्म चक्र का प्रवर्तन हुआ। भगवान धर्म चक्री हुए। पृथ्वी के चक्रवर्ती से आध्यात्मिक जगत के चक्रवर्ती का यश अनन्त गुणा अधिक होता है। जयति महावीर, जयति जिन शासन !

—अजित प्रसाद जैन

श्री महावीर वचनामृत

विणओ धम्मस्स मूलं

धर्म का मूल विनय (मान रहित होना) है।

विवेगे धम्म माहियं

विवेक (सद् असद् विवेक) में मनुष्यों का धर्म निहित है।

जो पुण चरित्तहीणो किं तस्स सुदेण बहुएण

जो व्यक्ति चरित्र से हीन है उसके बहुत से शास्त्रों के जानने से भी क्या लाभ है अर्थात् कोई लाभ नहीं है। ★

व्यसन-जाल

—डा० ज्योति प्रसाद जैन

तीसरे मूलसूत्र, **दशवैकालिक,** की निर्युक्ति में एक बोधप्रद रोचक वार्तालाप प्राप्त हुआ ।

किसी राज्य का राजा बड़ा उच्छृंखल, स्वेच्छाचारी, अविवेकी एवं दुराचारी था । उसके अन्याय, शोषण और अत्याचारों से प्रजा पीड़ित थी, शासन में अव्यवस्था हो रही थी, और उसके असदाचरण के प्रभाव से राज्य-कर्मचारियों एवं प्रजा में अनैतिकता बढ़ती जा रही थी । राज्य और राजा के हितचिन्तक वृद्ध प्रधानमन्त्री इस वस्तुस्थिति से बड़े चिन्तित थे । शासन व्यवस्था को सुधारने और राजा को सुमार्ग पर लाने के लिये उन्होंने भरसक चेष्टा की, किन्तु उनके सारे प्रयत्न विफल हुए । अत्यन्त निराश होकर वह एक महात्मा की शरण में पहुँचे, अपनी चिन्ता बताई और अनुनय-विनयपूर्वक प्रार्थना की कि 'प्रभो ! प्रजा की, राज्य की और राजा की रक्षा का अब आप ही कोई उपाय कर सकते हैं । आप पूर्णतया समर्थ हैं ।' दयालु महात्मा ने सब सुनकर मन्त्री को आश्वासन दिया कि कुछ न कुछ करेंगे, वह निश्चिन्त होकर अपने घर जांय ।

महात्मा को ज्ञात था कि सब अनर्थ का मूल वह राजा ही है, और उसका कारण राजा का प्रायः सभी सातों व्यसनों में, विशेषकर द्यूतक्रीड़ा में, अहर्निश रत रहना है । अतएव राजा के सुमार्ग पर आते ही समस्या का समाधान हो जायेगा । उन्होंने ज्ञात किया कि शिकार या वायु सेवन आदि के निमित्त राजा प्रायः नित्य ही प्रातः काल राजधानी से नातिदूर फैले वन के बीच बहती नदी के तट तक आता है । अतएव, महात्मा एक बड़ी सी चादर तन पर लपेट कर उक्त नदी के तट पर एक ऊँचे स्थान पर जल की ओर मुँह कर के बैठ गये । राजा घोड़े पर सवार शिकार खेलता वहाँ आया और इन्हें बैठा देखकर कौतूहलपूर्वक पूछा —

राजा – तुम कौन हो ?

साधु – देख ही रहे हो, एक संसार-त्यागी साधु हूँ ।

राजा – संसार-त्यागी साधु हो तो यह इतना बड़ा चदरा शरीर पर क्यों लपेट रखा है ?

साधु – बात यह है कि इस वस्त्र के द्वारा नदी से मछलियों को और छोटे-मोटे पशु-पक्षियों को फाँसने-पकड़ने में सुविधा होती है ।

राजा – तो तुम शिकार भी करते हो और मछलियों व पशु-पक्षियों की हत्या भी करते हो ?

साधु – हाँ, जब मच्छी-मांस आदि खाने की इच्छा होती है तो शिकार करता हूँ ।

राजा – तो तुम मच्छी-मांस का भक्षण भी करते हो ?

साधु – हाँ, जब शराब पीता हूँ तो बिना मांस-मच्छी के मज़ा नहीं आता ।

राजा – अरे ! तुम शराब भी पीते हो ?

साधु – हाँ, जब वेश्यासेवन करता हूँ तो शराब भी पीता हूँ ।

राजा – तुम वेश्यासेवन भी करते हो ?

साधु – वेश्या न हो तो किसी अन्य परस्त्री से भी काम चल जाता है ।

राजा – तो, तुम व्यभिचारी-दुराचारी भी हो ?

साधु – हाँ, जब अपने विरोधियों--शत्रुओं आदि का दमन कर लेता हूँ, तो इसी प्रकार मौज-मज़ा करता हूँ ।

राजा – तुम्हारे विरोधी और शत्रु भी हैं ?

साधु – हाँ, जिन लोगों का धन लूटता-खसोटता हूँ, वे मेरे शत्रु और विरोधी तो हो ही जाते हैं ।

राजा – अरे ! तुम चोरी और लूटमार भी करते हो ?

साधु – हाँ, जब जुए में अधिक द्रव्य हार जाता हूँ तो ये कार्य भी करने ही पड़ते हैं।

राजा – इस प्रकार तो तुम सभी कुव्यसनो में फँसे हो, बड़े दुराचारी हो ?

साधु – मैं दासीपुत्र जो हूँ।

राजा – यही कसर रह गयी थी, परन्तु तुम तो कहते हो कि एक संसार-त्यागी साधु हो ?

साधु – ऊपर से देखने में - वेष आदि से व नाम से तो साधु ही हूँ। किन्तु तुम कौन हो ?

राजा – मुझे नहीं जानते ? मैं यहाँ का राजा हूँ। तुम भयङ्कर अपराधी हो, तुम्हें दण्डित करूँगा।

इस पर साधु ने अट्टहास किया और बोला - बहुत खूब ! फिर तो जैसा मै नक़ली साधु हूँ वैसे ही तुम नक़ली राजा हो।

राजा को बड़ा क्रोध आया और डपटकर बोला - यह क्या बकते हो ?

साधु बोला - राजन् ! जो कुलीन और सच्चा राजा होता है, वह उपरोक्त सातों कुव्यसनों से दूर रहता है। वह विवेकी, न्यायी, सदाचारी और प्रजावत्सल होता है। जब एक व्यसन की लत पड़ जाती है तो शनैः-शनैः सभी व्यसन आ इकट्ठे होते हैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धांत के अनुसार प्रजा भी राजा का अनुकरण करती है। दुराचारी अविवेकी राजा के कर्मचारी भी भ्रष्ट हो जाते हैं, जनता में अनैतिकता घर कर लेती है, और राज्य की समृद्धि, शक्ति और शान्ति नष्ट हो जाती है। और यदि राजा न्यायी, विवेकी, सदाचारी और प्रजावत्सल होता है तो प्रजा में भी नैतिकता, सुख और शांति पनपते हैं तथा राजा का यश और प्रताप चहुँदिश में विस्तार पाता है। अब सोचो राजन् कि यदि तुम सच्चे, असली राजा हो तो मुझे दण्ड देने के अधिकारी हो, और यदि झूठे, नकली, दिखावे-मात्र के राजा हो तो तुम्हें मुझे दण्ड देने का क्या अधिकार है ?

(शेष पृष्ठ १४४ पर)

क्रान्तिकारी अर्जुन लाल सेठी

—डा० अमर पाल सिंह

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले देशभक्तों के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए कवि दिनकर ने लिखा था—

कलम आज उनकी जय बोल,
जला अस्थियाँ बारी-बारी, छिटकायी जिनने चिनगारी
जो चढ़ गये पुण्य वेदी पर लिये बिना गरदन का मोल
कलम आज उनकी जय बोल.....

लगभग छः दशक पूर्व कवि दिनकर ने ये उद्‌गार व्यक्त किये थे। उन दिनों स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये सारे देश में आन्दोलन चल रहे थे, ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष हो रहे थे।

(पृष्ठ १४३ का शेष)

साधु की बात सुनकर राजा मौन हो गया। उसकी आंखें खुल गईं। वह समझ गया कि यह सब महात्मा का अभिनय था जो उन्होंने उसे सुमार्ग पर लाने के लिये ही किया था। वह महात्मा के चरणों में गिर पड़ा, अपने कुकृत्यों पर पश्चाताप करने लगा और महात्मा से क्षमा याचना करने लगा। महात्मा ने मुस्कराकर उसे उठाया और आशीर्वाद दिया - 'कल्याण हो!' अपने वस्त्र उन्होंने वहीं उतार फेंके और पूर्ववत् निस्संग हो, मुड़कर एक ओर को चल दिये।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उसी समय से राजा की परिणति एकदम बदल गयी। वह अब सच्चा, यथार्थ राजा था। प्रजा में हर्ष छा गया। वृद्ध मन्त्री अभीष्ट सिद्धि से आनन्द विभोर हो गये।

[३ दिसम्बर १९७६ को भारत में आपातकालीन दुर्व्यवस्था से क्षुब्ध और न्यायपूर्ण विधिक नियमन की आशा संजोये एक बौद्धिक की अभिलाषा के रूप में डाक्टर साहब ने इसे लिखा था। —सं०] ★

आन्दोलन में भाग लेने वाले लोग जेल जाते थे, यातनाएँ सहते थे। अनेक देशभक्त फांसी के फन्दे चूम कर अपने प्राण उत्सर्ग कर देते थे। स्वाधीनता संघर्ष के बलिदानियों की गाथाएँ जनमानस को आन्दोलित कर देती थीं, उनके चरित्र लोगों को प्रेरणा प्रदान करते थे। देशभक्त सर्वत्र वन्दनीय, अभिनन्दनीय थे। उनके तथा उनके कार्यों के बारे में लोग जानने को उत्सुक रहते थे। इन संघर्षों के माध्यम से देशवासी स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हो रहे प्रयासों के साथ जुड़ गये थे। इन प्रयासों से सदियों से चली आ रही पराधीनता समाप्त हो गयी। १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को देश स्वाधीन हो गया और स्वाधीन भारतीय राष्ट्र ने अपनी नयी यात्रा आरम्भ की।

भारत की स्वाधीनता के पहले पचास वर्ष अभी पूरे होने को हैं। किन्तु इस अल्प अवधि में उस आन्दोलन को जिसने देश को स्वाधीन बनाया, देशवासियों ने भुला दिया, मातृदेवी पर अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले देशभक्तों को विस्मृत कर दिया। विद्वानों का मत है कि **इतिहास का विस्मरण राष्ट्र की अवनति का द्योतक होता है।** भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन तो अभी कुछ दशकों पूर्व तक चल रहा था। उसमें भाग लेने वाले बहुत से लोग अपनी स्मृतियाँ संजोये अभी समाज में विद्यमान हैं। ऐसे लोग भी बहुत बड़ी संख्या में रहे जिन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन का लाभ उठाया और आज भी उठा रहे हैं। बहुत से लोग उच्च पदों पर आसीन रहे और सत्ता का उपभोग किया। फिर भी कुछ वर्षों पहले के इस इतिहास को भुला दिया गया। इतनी शीघ्रता से आयी यह विस्मृति चिन्ता का विषय है। विदेशी शासकों ने अपना इतिहास प्रस्तुत कर दिया। **ट्रांसफर ऑफ पावर** आदि पुस्तकों में भारत में ब्रिटिश शासन, उसके उद्देश्य, उसकी समाप्ति आदि का ब्रिटिश दृष्टिकोण से अधिकृत विवरण दशकों पूर्व प्रस्तुत कर दिया गया। किन्तु भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन तथा स्वाधीनता प्राप्ति का कोई अधिकृत एवं सम्पूर्ण इतिहास अथवा विवरण भारतीय राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया गया। शासन निष्क्रिय

रहा, इतिहासकार मौन रहे । इस बीच विषयगत इतिहास की सामग्री विनष्ट एवं विलुप्त होती गयी ।

प्रायः आठ वर्ष हुए मैने इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन से इस सम्बन्ध में बात की थी और भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन पर अपने शोध कार्य के सन्दर्भ में अर्जुन लाल सेठी के बारे में जानकारी चाही थी । उन दिनों वे अस्वस्थ थे, ठंड और कफ से पीड़ित थे, कुछ ज्वर भी था । चारबाग स्थित निवास 'ज्योति निकुंज' के बड़े हाल में तखत पर बैठे कुछ लिख रहे थे । अपने कागज-पत्रों को देख उन्होंने सेठी के बारे में मुझे जानकारी दी और **शोधादर्श** (अंक ६, पृ० २७--२९) में लिखा भी । उनसे यह मेरी अन्तिम भेंट थी । जैनमत के विविध पक्षों पर शोध, इतिहास के अनुरक्षण तथा लेखन की उन्हें चिन्ता थी, सच्चे समाजसेवियों और देशभक्तों की स्मृतिरक्षा के लिए वे कुछ करना चाहते थे । अस्वस्थ रहते हुए भी वे लेखन कार्य में व्यस्त रहे । किन्तु समय ने साथ न दिया । कुछ महीने पीछे वे दिवंगत हुए और आने वाली पीढ़ियों के लिए यश की धरोहर छोड़ गये ।

विस्मृत स्वाधीनता सेनानियों में से इन्हीं **अर्जुन लाल सेठी** की किंचित चर्चा यहाँ करेंगे । इनके पितामह भवानी दास सेठी दिल्ली के वैद्यवाडा मुहल्ले में रहते थे और व्यापार करते थे । सन् १८४५ ई० में वे दिल्ली छोड़ कर जयपुर चले गये । वहाँ उन्होंने दूसरा विवाह किया जिससे जवाहर लाल सेठी का जन्म हुआ । इन्ही जवाहर लाल सेठी के पुत्र अर्जुन लाल सेठी थे जिनका जन्म ९ सितम्बर सन् १८८० ई० में जयपुर में हुआ था । उनकी शिक्षा जयपुर में हुई । सन् १८९८ ई० में मैट्रिक तथा सन् १९०२ ई० में उन्होंने बी० ए० पास किया । उन्हीं दिनों उनका विवाह हुआ तथा पिता जवाहर लाल सेठी का, जो चौमू में कामदार के पद पर थे, निधन हुआ । सेठी चौमू में कामदार (दीवान) के पद पर काम करने लगे किन्तु इस पद पर थोड़े दिन ही रहे । एक अंग्रेज अधिकारी चौमू पहुँचा । वहाँ उसका भव्य स्वागत किया गया, फिर भी उसने हिन्दुस्तानियों

को गंवार कहा। सेठी को इससे ठेस लगी और उन्होंने पद से त्याग-पत्र दे दिया। उन्हें जयपुर राज्य में निजामत का पदभार संभालने का प्रस्ताव हुआ तो उसे भी उन्होंने अस्वीकार किया। फिर वे समाज सेवा के क्षेत्र में आ गये। वे आजीवन समाज-सेवा-व्रती रहे। २२ दिसम्बर सन् १९४१ ई० को अजमेर में उनका निधन हुआ था।

सेठी के जीवन के आरम्भिक दिनों में देश में परिवर्तन हो रहे थे, समाज में नयी चेतना का संचार हो रहा था। भारत के पूर्वी अंचल बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन तथा सामाजिक एकता के अभियान आरम्भ हो गये थे। स्वाधीनता आन्दोलन का मन्त्र 'वन्दे मातरम्' दिशाओं में गूंजने लगा था। सन् १९०५ ई० में बंग भंग के साथ इन आन्दोलनों ने स्वाधीनता प्राप्ति के लिए संकल्प तथा विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का रूप ले लिया था। क्रान्तिकारियों के दल संगठित हो रहे थे जो बंगाल के सुदूर अंचलों तथा देश के विभिन्न भागों में अपने कार्यक्रमों का विस्तार कर रहे थे। सन् १९०१ ई० में अनुशीलन समिति का गठन हुआ। अन्य क्रान्तिकारी दल भी बन रहे थे। सशस्त्र संघर्ष का बिगुल बज उठा। ये क्रान्तिकारी दल विदेशी सत्ता को उखाड़ फेकने के लिए सक्रिय हो उठे। उनमें अनुशीलन समिति के रास बिहारी बोस के दल ने उत्तर भारत के विभिन्न भागों में क्रान्तिकारी दलों को गठित करने का विशेष प्रयास किया। बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों में ये दल सक्रिय रहे। नवयुवक सेठी पर इन आन्दोलनों का प्रभाव पड़ा और वे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये। उन्होंने देश की स्वाधीनता के लिये सर्वस्व निछावर करने का संकल्प लिया।

सेठी मेधावी थे। उन्होंने जैन धर्म का गहन अध्ययन किया था। उन्हें पंडित कहते थे। वे भाषाविद थे। अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, अरबी, पाली, प्राकृत का उन्हें अच्छा ज्ञान था। इस्लाम के वे अच्छे जानकार थे, कुरान पर चर्चा के लिये मुसलमान उनके पास आते

थे। छः फुट लम्बे बलिष्ठ शरीर वाले सेठी में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प था। खादी का ढीला कुरता, गांधी टोपी और चश्मा, यह उनकी वेषभूषा थी। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। सेठी ओजस्वी वक्ता, लेखक एवं कवि थे। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात जब वे समाज सेवा के क्षेत्र में आये तब पहले वे सहारनपुर और मथुरा में जैन शिक्षण संस्थाओं से जुड़े। इन्दौर के त्रिलोक चन्द कल्याणमल जैन हाई स्कूल में भी वे रहे। यह क्रम थोड़े दिन ही चला। उन्होंने स्वयं शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने का निश्चय किया। सन् १९०७ ई० में उन्होंने जयपुर में वर्धमान जैन विद्यालय की स्थापना की। इसके साथ ही अन्य शिक्षा संस्थायें भी स्थापित कीं। इन विद्यालयों में राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। उनमें अध्यापन कार्य देशभक्त और क्रान्तिकारी करते थे। अनुशीलन समिति के सदस्य और क्रान्तिकारी विष्णुदत्त मिर्जापुर के वर्धमान विद्यालय में अध्यापक थे। देश के विभिन्न भागों के विद्यार्थी इन संस्थाओं में प्रवेश पाते थे, उनमें राष्ट्रीय भावना जाग्रत की जाती थी। माणक चन्द और मोती चन्द वर्धमान विद्यालय के छात्र थे जो शोलापुर से आये थे और जैन थे। आगे चल कर जब सेठी गिरफ्तार हुए तब उनके सहयोगी महात्मा भगवान दीन ने स्टेशन मास्टर के पद से त्यागपत्र दे दिया और उन्होंने सेठी के परामर्श से जैन विद्यार्थियों में देशभक्ति की भावना भरने के उद्देश्य से हस्तिनापुर में जैन गुरुकुल की स्थापना की थी।

राजस्थान में क्रान्तिकारी कार्यक्रमों में लगे चार व्यक्ति प्रमुख थे—अर्जुन लाल सेठी, केसरी सिंह बारहट, दामोदर दास राठी और गोपाल सिंह खरवा। ये कार्यक्रम पहले दशक से ही आरम्भ हो गये थे। दूसरे दशक में सक्रियता और बढ़ गयी। दिल्ली में २३ दिसंबर सन् १९१२ ई० को चांदनी चौक में जुलूस में लार्ड हार्डिंज के हौदे पर बम फेंका गया। इस बम कांड से सनसनी फैल गयी। सारे देश में, पुलिस सतर्क हो गयी, तलाशियां होने लगीं। सेठी के घर की तलाशी में दो पत्र मिले जो संकेत भाषा में लिखे हुए थे जैसे, पुराना

आटा मछलियों को डाल दिया जाय। उनका आशय स्पष्ट नहीं होता था। इस बीच दो घटनायें हुई। कोटा में जोधपुर के एक धनवान महन्त प्यारे राम की हत्या की गयी। उसकी जांच चल रही थी। एक स्थान पर केसरी सिंह अपने मित्रों के साथ बात कर रहे थे। वहां रामकरण अपनी बहन प्रभावती के साथ थे। बातचीत में प्रभावती ने भाई रामकरण से कहा—"मछलियाँ आटा खाकर मोटी हो गयी होंगी।" टोह में लगे गुप्तचर विभाग के कर्मचारी ने इसे सुन लिया और सेठी के घर से मिला पत्र हत्या के षड़यन्त्र से जोड़ दिया गया। गिरफ्तारियाँ हुईं, मुकदमा चला। सबूत न होने पर भी न्यायालय ने पुलिस की बात मान ली और केसरी सिंह, लाहेरी, रामकरण को बीस-बीस वर्ष और हीरा लाल को सात वर्ष की कैद की सजा मिली। केसरी सिंह कोटा से हटा कर हजारी बाग जेल में रखे गये। सन् १९१९ ई० के राजनीतिक सुधारों के उपरान्त जेल से छूटे थे। उनके पुत्र प्रताप सिंह को बम बनाने के अपराध में गिरफ्तार किया गया था। अन्य घटना आरा जिले में निमेज में हुई जहाँ २० मार्च सन् १९१३ ई० को जैन उपासरे पर धन संग्रह के लिए जोर डाला गया जिसमें मुखिया मारा गया। घटना की जांच हुई, गिरफ्तारियां हुईं। इस घटना के सिलसिले में वर्धमान विद्यालय के कई लोग पकड़े गये और मोतीचंद को फांसी हुई। इस घटना की चर्चा जस्टिस रौलट की अध्यक्षता में गठित सिडीशन कमेटी की सन १९१८ ई० की रिपोर्ट में की गयी है।

सेठी के विरुद्ध सबूत तो नहीं मिले किन्तु उन्हें जयपुर में नजरबन्द किया गया। उन्होंने अनशन किया और आस्थावान जैन होने के कारण जिन प्रतिमा का दर्शन किये बिना भोजन न करने का संकल्प किया। अन्त में जिन प्रतिमा की व्यवस्था की गयी। सेठी की रिहाई की मांग होने लगी। इस पर उन्हें वेलूर जेल भेज दिया गया जहां वे प्रायः ६ वर्ष रहे। उनकी गिरफ्तारी का व्यापक विरोध हुआ। देश के प्रमुख समाचार पत्रों ने उनकी रिहाई की मांग की। सन् १९१७ ई० को कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में उनकी

रिहाई के लिए प्रस्ताव पास किया गया। इस सम्बन्ध में कांग्रेस प्रेसिडेंट श्रीमती एनी बिसेंट वाइसराय से मिली थीं। उस समय तक देश के प्रमुख नेता के रूप में सेठी की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। सन् १९२० ई० में जेल से छूट कर लौटते हुए पूना में तिलक ने रेलवे स्टेशन पर पहुंच कर उनका भव्य स्वागत किया। तिलक से उनका संपर्क सन् १९०७ ई० में सूरत कांग्रेस अधिवेशन में हुआ था जिसमें भाग लेने के लिए वे गये हुए थे। सेठी ने वहाँ तिलक का समर्थन भी किया था। इन्दौर में भी सेठी का स्वागत हुआ। लौटने पर अजमेर उनकी गतिविधियों का केन्द्र बना। जयपुर राज्य में उनके निवास पर प्रतिबन्ध था।

सेठी ने सन् १९२१ ई० के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता और मद्यनिषेध के लिए विशेष अभियान चलाये जिसके लिए गांधी जी ने उनकी सराहना की थी। वे आन्दोलन में गिरफ्तार भी हुए थे। उन्हें मध्य प्रदेश की सिवनी जेल में डेढ़ वर्ष रखा गया था। उनके साथ महात्मा भगवान दीन को भी डेढ़ वर्ष की सजा हुई थी। सन् १९३० ई० में सेठी पुनः गिरफ्तार हुए थे। वे कांग्रेस कार्यक्रमों का संचालन करते थे और क्रान्तिकारियों को आश्रय भी देते थे। सेठी ने चन्द्र शेखर आजाद, अशफाकुल्ला खां, शौकत उस्मानी तथा अन्य लोगों के गुप्तवास की व्यवस्था की थी।

समाज में सेठी की प्रतिष्ठा थी। लोग उन्हें जिन्दा मैक्स्विनी कहते थे। उन्होंने अपने बन्दी जीवन में सत्तर दिन का अनशन किया था और जीवित रहे थे। आयरलैंड के देशभक्त टेरेण्स मैक्स्विनी ने जेल में ७५ दिन का अनशन किया था और अपने प्राण दे दिये थे। जेल से छूटने पर सेठी से चितरंजन दास ने कहा था—"यदि आप का जन्म बंगाल में हुआ होता तो आप देखते कि वहाँ के लोग आप का कितना सम्मान करते हैं।" सन् १९१६–१७ में अम्बाला में जैनवेदी की प्रतिष्ठा हुई थी। आयोजकों में लखनऊ के अजित

प्रसाद जैन भी थे। उस अवसर पर अर्थ संग्रह और जनजागरण के लिए सेठी के चित्र बेचे गये थे जिन्हें लोगों ने सहर्ष खरीदा था। किन्तु आज उनका कोई चित्र देखने में नहीं आता। केवल एक क्षतिग्रस्त चित्र राजस्थान में स्वाधीनता आन्दोलन पर एक पुस्तक में प्रकाशित है। सेठी पर दूरदर्शन से प्रसारित एक सीरियल में उसी चित्र का उपयोग किया गया, उनके जीवन पर कोई विशेष जानकारी नहीं दी गयी। एक अवसर पर सेठी की टोपी की नीलामी से एक सहस्र से अधिक रुपये मिले थे। उन्ही सेठी ने सन् १९३७ ई० के लगभग गांधी टोपी लगाना छोड़ दिया था, वे कांग्रेस की दलगत राजनीति से खिन्न थे। सेठी के साथियों में महात्मा भगवानदीन, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, लाला हनुमन्त सहाय, पं० सुन्दर लाल आदि थे। जब वे दिल्ली आते थे तब पहाड़ी धीरज में गोयलीय के यहाँ ठहरते थे, क्रान्तिकारियों तथा अन्य लोगों से सम्पर्क करते थे। जिन्होंने उन्हें देखा था उनका कथन हैं कि सेठी अपने संकल्प में अडिग थे, वे कभी झुके नहीं। पं० सुन्दर लाल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– "जैन समाज के प्रमुख देशभक्त पंडित अर्जुन लाल सेठी अपने समय के महान क्रान्तिकारियों में थे। साम्प्रदायिकता उनमें छू तक नहीं गयी थी।"

राजस्थान की राजनीति में सेठी को विरोध का सामना करना पड़ा। कांग्रेस में एक दल था जो अपने को गांधीवादी कहता था। इस दल ने सेठी को राजस्थान की राजनीति से हटाने का पूरा प्रयास किया। सन् १९२५ ई० के कानपुर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने वे आये थे। विरोधियों ने षड़यन्त्र किया, उन्हें भाग लेने से रोका गया। सेठी ने पंडाल में प्रवेश करने का प्रयास किया तो पिटे भी। राजनीतिक गुटबन्दियों से सेठी को आघात पहुँचता था। उन्होंने कांग्रेस से अपना हाथ खींच लिया। सन् १९३४ ई० में गांधी जी अजमेर में उनसे मिले और कांग्रेस में सक्रिय होने के लिये उन्हें सहमत किया। उसी वर्ष वे राजपूताना और मध्य भारत

कांग्रेस के प्रान्तपति चुने गये किन्तु विरोधियों ने चुनाव रद्द करा दिया।

सेठी के जीवन का अन्तिम दशक कष्टपूर्ण रहा। सन् १९३० से ही वे अर्थाभाव से ग्रस्त थे। तीस रुपये मासिक पर बच्चों को अरबी पढ़ाते थे। वेलूर जेल से छूटने पर उन्होंने अपनी कन्याओं का विवाह किया था। इनमें एक का विवाह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण युवक से किया था। इस अन्तरजातीय विवाह से जाति-बहिष्कृत हुए, उनके मन्दिर प्रवेश पर रोक लगी। अपने परिवार से वे अलग रहने लगे। उनकी मृत्यु का समाचार परिवार को तीन दिन बाद मिला था। उन्हें दफन किया गया था। उनके परिवार का जीवन बड़े कष्ट में बीता। अपने पीछे वे पत्नी और तीन छोटे बच्चे छोड़ गये थे। उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात जयपुर में एक कालोनी का नाम 'अर्जुन लाल सेठी नगर' रख दिया गया था। और कुछ नहीं हुआ।

अर्जुन लाल सेठी ने कई पुस्तकें लिखी थीं, किन्तु उनका कुछ पता नहीं चलता। उनकी एक प्रतिबन्धित कविता 'अपनी बीती' मुझे मिली है जिसे पाठकों के लिए प्रस्तुत करता हूँ। यह सन् १९३० में दिल्ली से प्रकाशित प्रतिबन्धित गीत संग्रह **आज़ादी की लहर** में संग्रहीत है। गीत यह है—

अपनी बीती

—अर्जुन लाल सेठी जैन

न छेड़ो हमें हम सताये हुए हैं
सितमगर के पंजे में आये हुए हैं।

हमारे ही घर में हमें हाथ में कर
हमारे हक़ों को दबाये हुए हैं।

दिये टुकड़े जिनको रहम खाके हमने
वही हम से अब सिर उठाये हुए हैं।

दिया साथ जिनका हमेशा से हमने
वो खुदगर्ज एहसां भुलाये हुए हैं।

न खौफे खुदा है न इनसानियत कुछ
तबाही वह शाही में लाये हुए हैं।

तिलक भी नहीं आज हम में रहा हा
नया दाग हम दिल पे खाये हुए हैं।

न हमदर्द कोई न रहबर हमारा
सियाह अब्र भारत में छाये हुए हैं।

खुदाया मदद हिन्द की कीजियो तू
विपक्षी हमें सब मिटाये हुए हैं।

महान क्रान्तिकारी एवं देशभक्त पं० अर्जुन लाल सेठी ने देश-सेवा, समाजसेवा के लिए अपना जीवन समर्पित किया था। उनके जीवन एवं कार्यों के बारे में शोध की अपेक्षा है। स्वाधीनता आन्दोलन में देश के सभी भागों के लोगों ने, सभी वर्गों के लोगों ने, सभी धर्मों के लोगों ने अपना योगदान दिया था जो सर्वथा उल्लेखनीय है। एक रिपोर्ट से पता चलता है कि सन् १९०१ ई० में काला पानी की सजा पाये हुए १६२५६ कैदी अंडमान में थे। इनमें ७८४७ हिन्दू, ३६७८ मुसलमान और १८१८ बौद्ध थे। शेष में ३६६ ईसाई, ३२६ सिख, ४९ जैन, २ पारसी और छः अन्य लोग थे। बौद्ध बर्मा से भेजे गये थे। जैन बन्दी कौन थे, कहाँ से भेजे गये थे—इसके बारे में जानकारी नहीं मिलती। ब्रिटिश शासक उन राजनीतिक बन्दियों को जिन्हें वे देश के मुख्य भूभाग से दूर रखना चाहते थे, अण्डमान भेज देते थे। इन विस्मृत बलिदानियों के बारे में पूरी जानकारी के बिना भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

——

पार्श्वनाथ विषयक प्राकृत साहित्य

—डा० ऋषभ चन्द्र जैन "फौजदार"

भगवान पार्श्वनाथ जैन परम्परा के २३ वें तीर्थंकर हैं। उनका जन्म स्थान काशी और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर सर्वमान्य हैं। पार्श्वनाथ विषयक साहित्य अनेक भाषाओं में उपलब्ध होता है। उनमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं कन्नड आदि भाषाएं प्रमुख हैं। यहाँ प्राकृत विषयक साहित्य पर विचार किया जा रहा है। अर्धमागधी आगम साहित्य के **स्थानांग** एवं **समवायांग** आदि ग्रन्थों में पार्श्वनाथ का उल्लेख मिलता है, किन्तु वहां उनका पूरा जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं है। निम्नलिखित रचनायें उल्लेखनीय हैं :-

कहावलि :

यह प्राकृत गद्य रचना है। इसमें बीच-बीच में प्राकृत पद्य भी पाये जाते हैं। इसके कर्ता १२वीं शती ईस्वी के आचार्य भद्रेश्वरसूरि हैं। इसमें अनेक कथाएं हैं। पार्श्वनाथ के जीवनवृत्त से सम्बन्धित कथा भी इसमें उपलब्ध होती है।

चउप्पन्नमहापुरिसचरिय (शीलाचार्य कृत) :

इसका प्रकाशन प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, से सन् १९६१ ई० में हुआ है। इसमें ५४ महापुरुषों के जीवन चरित्र का वर्णन है। प्राकृत के महाकाव्यों में इसका विशिष्ट स्थान है। प्राकृत में महापुरुषों के चरित्र का एक साथ वर्णन करने वाला यह प्रतिनिधि महाकाव्य है। इसमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पूर्वभवों का सविस्तार विवेचन है। इसके कर्ता शीलाचार्य हैं, जो **आचारांग** के वृत्तिकार शीलाचार्य अपरनाम तत्त्वादित्य से भिन्न हैं। **बृहट्टिप्पनिका** में इसका रचना काल विक्रम सं० ९२५ दिया गया है।

चउप्पन्नमहापुरिसचरिय (आम्रकवि कृत) :

इसमें भी ५४ महापुरुषों का चरित्र वर्णित है। ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है तथा इसका प्रमुख छन्द गाथा है। पूरा ग्रन्थ १०३ अधि-

कारों में विभाजित है। इसमें ८७३५ गाथाएँ तथा १०० इतरवृत्त हैं। इसके कर्ता आम्रकवि हैं। यह ग्रन्थ शीलाचार्य के उपरोक्त महाकाव्य के बाद लिखा गया प्रतीत होता है। इसकी अनुमानतः १६वीं शताब्दी ई० की हस्तलिखित प्रति खम्भात के विजयनेमि-सूरीश्वर शास्त्र-संग्रह में उपलब्ध है। इसमें भी पार्श्वनाथ का जीवन वृत्त वर्णित है।

पासणाहचरिय :

प्राकृत भाषा में पार्श्वनाथ विषयक यह प्रमुख एवं एक मात्र चरितकाव्य है। इसके कर्ता देवभद्राचार्य हैं, जिनका नाम आचार्य पद पर आरूढ़ होने से पूर्व गुणचन्दगणि था। उन्होंने इसकी रचना यशदेव श्रेष्ठि की प्रेरणा से विक्रम सं० ११६८ में भडोंच में की थी। यह अहमदाबाद से सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ। इसका गुजराती अनुवाद भी आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर, से वि० सं० २००५ में प्रकाशित हुआ है। यह रचना गद्य-पद्य-मय तथा सरस है। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ संस्कृत-शैली से प्रभावित है। इसमें संस्कृत के अनेक सुभाषित उद्धृत हैं।

यह ग्रन्थ पाँच प्रस्तावों में विभाजित है। पहले प्रस्ताव में पार्श्वनाथ के दो पूर्वभव वर्णित हैं। पहले भव में उनका नाम मरूभूमि था। उनका कमठ नाम का दूसरा भाई था। दूसरे भव में पार्श्वनाथ हाथी हुए तथा कमठ सर्प। दूसरे प्रस्ताव में तीसरे भव में वे दोनों क्रमशः कनकवेग (किरणवेग) विद्याधर और सर्प हुए। चौथे भव में वे दोनों वज्रनाभराजा और भील के रूप में उत्पन्न होते हैं। पाँचवें भव में वे क्रमशः कनक चक्रवर्ती और सिंह हुए। तीसरे प्रस्ताव में छठे भव में मरुभूमि वाराणसी के राजा अश्वसेन और वामा देवी के पुत्र होते हैं। उनका नाम पार्श्वनाथ रखा जाता है। कमठ पहले तापस, फिर मेघमाली नामक देव होता है। इसी प्रस्ताव में पार्श्वनाथ की दीक्षा एवं तपस्या का वर्णन है। मेघमाली देव द्वारा विभिन्न उपसर्गों का भी विवरण मिलता है। चौथे प्रस्ताव में

पार्श्वनाथ की कैवल्य प्राप्ति एवं धर्मोपदेश का वर्णन है। वे पिता के प्रश्न पर सुभदत्त, अज्जघोष, वसिट्ठ, बंभ, सोम, सिरिधर, वारिषेण, भद्दजस, जय और विजय नामक दस गणधरों को उपदेश देते हैं। पांचवें प्रस्ताव में मथुरा, काशी और आमलकल्पा नगरों में विद्या और धर्मोपदेश का वर्णन है।

पार्श्वनाथचरित्र :

जिरत्नकोश पृष्ठ २४४ पर इसका उल्लेख है। वहाँ इसका दूसरा नाम **पार्श्वनाथ दशभव चरित्र** भी बताया गया है। इसका परिमाण २५६४ प्राकृत गाथा है। इसके कर्ता अज्ञात हैं। **बृहत्टिप्पणिका** में भी इसका उल्लेख होने की सूचना है।

पार्श्वनाथपुराण :

जिनरत्नकोश पृष्ठ २४७ पर इसका उल्लेख है। यह प्राकृत की रचना है। इसके कर्ता नागदेव हैं। ग्रन्थ पर प्रभाचन्द्र की पंजिका टीका का भी उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में अनेक पार्श्वनाथ स्तोत्र भी प्राप्त होते हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार है—

१. उवसग्गहर :

यह महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध स्तोत्र है। इसमें केवल पाँच प्राकृत गाथाएँ हैं। इसमें पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। इसके कर्ता भद्रबाहु हैं। **जैनस्तोत्र सन्दोह** भाग—१ के परिशिष्ट—३ में इसकी श्रीचन्द्राचार्य कृत लघुवृत्ति प्रकाशित है। उक्त ग्रन्थ के दूसरे भाग में पुनः यह श्रीद्विजपार्श्वदेवगणिविरचित लघुवृत्ति के साथ छपा है। दोनों टीकाओं में सात यन्त्रों एवं अनेक मन्त्रों द्वारा उक्त स्तोत्र का महत्व बताया गया है। जिनप्रभसूरि ने भी इस स्तोत्र की टीका लिखी है। जैनेतर समाज में भी इस स्तोत्र को समादर प्राप्त है।

उवसग्गहरं श्रीपार्श्वनाथस्तोत्र :

इसके कर्ता अज्ञात हैं। इसमें २० गाथाएं हैं। उनमें अनेक मन्त्रों का प्रयोग किया गया है। स्तोत्र की पहली, दूसरी, तीसरी, ग्यारहवीं एवं तेरहवीं ये पाँच गाथाएं **उवसग्गहर** स्तोत्र की ही हैं। यह स्तोत्र **प्रियंकरनृपकथा** के परिशिष्ट "ग" में प्रकाशित है।

पार्श्वस्तोत्र :

इसके कर्ता तेजसागर हैं। इसमें २१ गाथाएं हैं। **उवसग्गहर** की ५ गाथाओं की पादपूर्ति स्वरूप २० गाथाएं हैं तथा अन्तिम २१वीं गाथा में रचनाकार ने अपना नामोल्लेख किया है। यह स्तोत्र **प्रियंकरनृपकथा** के परिशिष्ट ''घ'' में प्रकाशित है। इसमें भी पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है।

भयहरस्तोत्र :

इसका दूसरा नाम **नमिऊण स्तोत्र** भी प्रसिद्ध है। इसके कर्ता मानतुंगसूरि हैं। इसमें २३ प्राकृत गाथाओं में पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। कहीं-कहीं २४ गाथाएं भी मिलती हैं। प्रारम्भ और अन्त में इस स्तोत्र को महाभय-नाशक कहा गया है। यह संस्कृत वृत्ति के साथ **जैनस्तोत्र सन्दोह** भाग-२ में प्रकाशित है।

श्रीपार्श्वनाथस्तवन :

इसके कर्ता श्री जिनवल्लभसूरि हैं। इसमें २२ प्राकृत गाथाएं हैं।

श्रीपार्श्वनाथदशभवस्तवन :

इसका परिमाण नौ प्राकृत गाथा है। इसके कर्ता धर्मघोषसूरि हैं। इन्हीं का एक और श्रीपार्श्वनाथस्तवन भी उपलब्ध होता है और उसमें भी नौ गाथाएं हैं।

पार्श्वजिनस्तवन :

इसमें सात प्राकृत गाथाएं हैं। इसके कर्ता रत्नकीर्तिसूरि हैं।

पार्श्वप्रभुस्तवन :

इसमें भी सात गाथाएं हैं। इसके कर्ता कमलप्रभाचार्य हैं।

स्तम्भनपार्श्वजिनस्तवन :

यह स्तवन पूर्णकलशगणि रचित है। इसमें ३६ प्राकृत गाथाएं एवं अन्त में एक संस्कृत पद्य है। इसमें अनेक यन्त्र तथा मन्त्र प्रयुक्त हैं। इस पर स्वोपज्ञवृत्ति भी उपलब्ध है।

पार्श्वनाथलघुस्तवन :

इसके कर्ता जिनप्रभसूरि हैं। इसमें दस प्राकृत गाथाएं हैं। स्तोत्र में श्लेष का प्रयोग करके आचार्य ने पार्श्वनाथ के साथ नवग्रहों की स्तुति की है। यहाँ नवग्रहों के लिए क्रमशः जयचक्खू, दिअराओं,

सुमंगलो, बुहो, देवायरिओ, कई, थिरो (जयचक्खुसुओ), सत्तमं और भुवणकेऊ, शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस स्तोत्र पर अवचूरि नामक संस्कृत टीका भी उपलब्ध है।

पार्श्वनाथजिनस्तवन :

इसके कर्ता अज्ञात हैं। इसमें १२ प्राकृत गाथाएं हैं। इसमें भी नवग्रह स्तुति है। स्तोत्र में नवग्रहों के लिए क्रमशः सहसकरो, चंदो, भूमिसुओ, बुहो, सुरमंती, सुक्को, सूरसुओ, राहू एवं केऊ शब्द प्रयुक्त हैं।

उक्त स्तोत्रों के अतिरिक्त अभयदेवकृत प्राकृत **पार्श्वनाथ नमस्कार** का उल्लेख **राजस्थान सूची**, भाग-३ पृ० २९४ एवं ३०१ पर मिलता है। उसी में पृ० १०५ पर **पार्श्वनाथ लघुपाठ** का भी उल्लेख है, किन्तु यहाँ कर्ता का नाम नहीं है। लाहौर से १९३९ ई० में प्रकाशित **पंजाब के जैन शास्त्र भंडारों की सूची** में प्राकृत के एक **पार्श्वजिनस्तवन** की सूचना है; यहाँ भी कर्ता का नाम नहीं दिया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राकृत भाषा में पार्श्वनाथ विषयक साहित्य पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। अभी तक शोध-खोज के आधार पर जो साहित्य सामने आया है, इससे अनुसन्धान का कार्य पूरा हो गया, ऐसी बात नहीं है। अभी भी अनेक शास्त्र-संग्रह ऐसे हैं, जो विद्वानों और अनुसंधाताओं की पहुँच से बाहर हैं। इनमें अन्य साहित्य उपलब्ध होने की प्रबल संभावनाएँ हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची :—

१. डा० जगदीश चन्द्र जैन : **प्राकृत साहित्य का इतिहास**
२. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : **प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास**
३. डा० गुलाब चन्द्र चौधरी : **जैन साहित्य का वृहद् इतिहास**
४. प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया : **पाइय भाषाओं अने साहित्य**
५. सम्पादक-चतुरविजय मुनि : **जैन स्तोत्र सन्दोह**, भाग १-२
६. **जिनरत्नकोश** (भण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टी०, पूना)
७. डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल : **राजस्थान के शास्त्रभंडारों की सूची**, भाग १ से ५।
८. **ए कैटेलाग आफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि पंजाब जैन भंडार्स**, पार्ट १
९. **अंगसुत्ताणि**, भाग १ से ३ (जैन विश्वभारती, लाडनू)
१०. सम्पादक-हीरालाल रसिकदास कापड़िया : **प्रियंकरनृपकथा उपसर्गहर-स्तोत्रं च**

★

संक्लेश और विशुद्धि

–प्रोफेसर एल० सी० जैन

जैनधर्म में मोक्ष अथवा केवल ज्ञान मय सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य की कुञ्जी रूप में विशुद्धि को प्रति पल कसा है, प्रयुक्त किया है। विशुद्धि एक प्रकार की नहीं, न ही केवल एक प्रकार की शक्ति धारण करने वाली होती है। प्रति समय स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर विशुद्धि संसार की मृत्यु और अन्त रहित शक्ति एवं सुख के जन्म को अनायास ही, बिना किसी अध्यवसाय के लाती है। जहां विगत संस्कार एवं संज्ञाएं या मूर्च्छाएं नीचे की ओर ले जाने में क्षणिक सुख का आकर्षण दिखाती हैं वहीं हृदय की निर्मलता दुष्टता का पाषाण तोड़कर क्षीर-नीर की सम धारा बहा देती है–पर के कष्ट को देखकर अपना सर्वस्व लुटा देने को तैयार हो जाती है। मोंह का, अपनों का, अपनी भौतिक क्षणभंगुर निधियों का, उनके अधिकार एवं उपयोग का प्रलोभन ही संक्लेश है जो नर्कादि गतियों का अन्ततः कारण बनता है। इनका हृदय से सर्वथा त्याग ही विशुद्धि है जो सम्यक् दर्शनादि का अभूतपूर्व साधन बनता है।

अखिल विश्व के समस्त समाजों में प्रोज्ज्वल जैन समाज माना जाता रहा है, अहिंसा और अपरिग्रह रूप विशुद्धियों को अपनाने के कारण। अविरल दान, सदाव्रत दान, प्रवचन, साधर्मी जनों के कष्टों के निवारण में, ब्याज रहित धन का दान आदि विशुद्धि का स्थान अब पुरोहितवाद, आडम्बर, एफ० डी० आर०, लौकिक संस्थाएं निर्माण आदि ने ले लिया है।

सम्प्रदाय, समाज, भाई-भाई, बहिनें-बहिनों के बीच खाई खोदना एवं दीवारें जाति-पांति की खड़ी करना वस्तुतः संक्लेश का कारण है तथा मैत्री प्रमोदादि भावना विशुद्धि हैं। कितनी गहराई पर जाकर मन सुरक्षादि की भावना को भड़काकर, अत्यन्त जटिलता एवं कुटिलता से अथवा संक्लेश से इन भेदभावों को पनपाता है, सत्ता एवं धन के लिए, इसे तो योगीश्वर ही जानते हैं। प्रलोभन

एवं भय को जैन धर्म में एक परमाणु मात्र भी स्थान नहीं है क्योंकि इनके द्वारा मात्र संक्लेश ही उत्पन्न हुआ है। निशंकित और निकांक्षित को इतनी गहराई पर ले जाकर दफना दिया गया है कि विशुद्धि का रूप दिखाई देना अब दुर्लभ, अत्यन्त दुर्गम, हो चला है। प्रतियोगिताओं, प्रतिष्ठा प्राप्ति आदि के जाल रंग रहित कर देने से वे संक्लेश को चरम बिन्दु तक ले जा रहे हैं और मानव तथा मानवता के मूल्य जैन समाज ने अब बदल कर रख दिये हैं।

एक छोटा सा उदाहरण है–कानूनों, नियमों से अत्यन्त बंधे रहने का। Alpha of the Plough (एल्फा आफ दाँ प्लाऊ) एक कहानी है जो बचपन में पढ़ी थी। एक महिला अपने कुत्ते को लिए टहलती हुई शहर से ४–५ मील दूरी तक जंगल में पहुँच चुकी थी। रात्रि झंपने लगी थी और अकस्मात बर्फ गिरना प्रारम्भ हो गया था। वह लौटने को आतुर थी और घबड़ाई हुई थी। इतने में एक बस शहर की ओर जाती हुई निकली। महिला ने हाथ देकर उसे रुकवाया। उसने बस में प्रवेश किया, साथ ही कुत्ते ने भी। बस कन्डक्टर ने महिला से कहा कि 'आप तो चल सकती हैं पर कुत्ता नियमानुसार बस में नहीं चल सकता है। या तो आप अकेली चलें या उतर जाएं।' महिला ने कहा, 'तूफान आने वाला है, कुत्ता बेचारा यहां मर जाएगा। कृपया उसे भी ले चलिए।' कन्डक्टर अड़ गया, 'मैं नियम का पालन करूंगा।' अन्ततः क्या हुआ, कहानी में नहीं था।

जो भी हो, हम जहाँ अज्ञात से मुक्त होने की बात सोचते हैं, वहाँ नियमों के एक भी बन्धन से मुक्त होने की बात नहीं सोचते हैं। वस्तुतः जहाँ भी बंधे रहने की बात होती है वहीं संक्लेश का जाल बढ़ता चला जाता है, और जहाँ मुक्त रहने की कला जागृत होती है वहीं संक्लेश, कुण्ठा, का जाल टूट कर, विशुद्धि की भव्यता और चेतना प्रकट होती चली जाती है। जिस मुक्ति के लिए हम अपने को बांधते चले जाते हैं वह बन्धन, सामाजिक हो या नैतिक, कहाँ ढील पा जाए–जहाँ आवश्यक हो वही सम्यक दर्शन की अभूत-

पूर्व कला है। वह युद्ध में भी हजारों को यमलोक पहुँचाता है पर न्याय से च्युत होकर नहीं।

आज का न्याय पक्षपात, क्लिक, सत्ता का दुरुपयोग, सामाजिक कुरीतियों का अन्तरंग से समर्थन आदि संक्लेश को लिये हुए चल रहा है और इसका गहरा प्रभाव जैन समाज पर भी पड़ा हुआ दिखाई देने लगा है। हमें धन की चकाचौंध एवं प्रतिष्ठाओं के रंगीन गारमेंट्स से दूर जाकर उस विशुद्धि के दरवाजे को पुनः खोलना है। सुई के छिद्र से ऊँट निकलना सम्भव हो सकता है किन्तु हृदय की यथार्थ बिशुद्धि के बिना स्वर्ग का दरवाजा नहीं खुल सकता है। विशुद्धि का सर्व प्रथम कदम अभूतपूर्व करुणा और दया को लेकर उठता है—पहले पर के प्रति, फिर अपने प्रति। बलि द्वारा प्रस्तुत उपसर्ग का संहार करने हेतु पूज्य विष्णु कुमार मुनि ने अपने मुनित्व का भी कुछ समय के लिए त्याग कर दिया था, फिर हम तो गृहस्थ हैं। अखिल विश्व में यद्यपि सभी धर्म मोक्ष को मंजिल मानते हैं किन्तु व्यक्तिगत, समाजगत आदि स्वार्थ, निहित स्वार्थ, हेतु शब्दों के अपने-अपने अर्थ लगाते आते हैं। संक्लेश और विशुद्धि का ध्यान जहाँ रखा गया वहाँ तो मुक्ति समीप आई, अन्यथा दूर होती चली गयी।

विशुद्धि का निर्धारण व्यक्तिगत चेतना एवं भव्यता कर सकती है, उसकी ऊँचाईयों की उपलब्धि भी उन्हीं से होती है। जब चेतना एवं भव्यता की "अगुरु लघु गुण-उकृष्ट-सम्पन्नता" अपने अतुलनीय प्रवाह में बहती है, तरंगित होती है, तभी विशुद्धि देवी मुक्ति रमा से भेंट कराने में समर्थ होती है। विशुद्धि में ही समस्त धर्म-लक्षण समाये हुए रहते हैं तथा तीर्थंकरत्व भावना का प्रथम बिन्दु दर्शन-विशुद्धि ही होता है। हम कैसे अपेक्षा कर सकते हैं कि कोई संगठन, समाज, देश, विशुद्धि का निर्धारण कर रहा है। जहाँ एक से दो होते हैं, तीनादि होते हैं, मुक्ति मंजिल से दूरी बढ़ जाती है, बढ़ती चली जाती है, क्योंकि अन्ततः निहित स्वार्थ ही उस जुड़ने की मंजिल हुआ करते हैं। जब हम एक दूसरे से टूटते चले जाते हैं, वहीं विशुद्धि को स्थान मिल पाता है और मुक्ति निकट आती चली जाती है।

अस्तु, विशुद्धि प्रतिपल होने वाला जीव का वह पारिणामिक भाव है, जो अपने पर्यावरण की अपेक्षा नहीं रखता है। वह प्रति समय वर्तने वाली, अध्यवसाय रहित, एक ऐसी क्रांति है जो स्वस्फूर्त होती है। वही ध्यान अग्नि की ज्वाला का कार्य करती है और वही अनेक उपलब्धियों का साधन वनती है।

महापुरुषों में विशुद्धि अनेक रूप से प्रकट हुई ज्ञात होती है। भगवान महावीर ने चन्दना सती राजकुमारी को दास-कैद की श्रंखलाओं से छुड़ाकर संघ में अग्रणी आर्यिका का स्थान दिया था। महात्मा गांधी ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन को जर्मनी के आगे हथियार डाल देने को कहा था। कहते हैं कि मोहम्मद पैगम्बर ने अन्तिम समय अपनी पत्नी को घर का सब कुछ दान देने की आज्ञा दी थी तथा रात्रि का दिया दूसरे के घर से लाये गये तेल द्वारा जलाया गया था।

संसार एवं मोक्ष के बीच अन्तर संक्लेश और विशुद्धि परिणामों द्वारा ही पहचाना जा सकता है। संसार में सदैव वने रहने के लिये संक्लेश आवश्यक है और स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए विशुद्धि के बिना कुछ भी होना संभाव्य नहीं है। विशुद्धि में शील है और शील में विशुद्धि है। दोनों की महिमा अपार है।

परिणामों की विशुद्धि कितनी हो कि मिथ्यात्व को तोड़कर सम्यक्त्वादि में परिवर्तित कर सके, यह जैन साहित्य का परम गणित है। वह सम्यग्दर्शन, परहित तो करता ही है किन्तु साथ ही साथ स्वहित भी करता चला जाता है। विशुद्धि शब्द में नहीं, अन्तस्तली आत्मिक भाव में रहती है और अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचकर अनन्तत्व को प्राप्त हो जाती है। क्षणभंगुर वस्तुओं को संक्लेश द्वारा प्राप्त किया जाता रहा है; अनन्तत्व की प्राप्ति, अनन्तगुणों की प्राप्ति, के लिए विशुद्धि को ही चुना जाता है। वस्तुतः तीनों कालों में वर्तने वाली कारण शुद्ध पर्याय का ध्यान, विशुद्धि के द्वारा उपलब्ध हो सकता है, जो सम्यक् दर्शन को अन्ततः उत्पन्न कर क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि और मुक्ति का हेतु वन जाता है। ★

चर्चा-समाधान

शोधादर्श २८ (पृ० ६७–६९) में कुछ रोचक प्रश्न और उनके शास्त्रोक्त समाधान दिये गये थे। इसने सुधि पाठकों की जिज्ञासा को प्रेरित किया है जो स्वागतार्ह है। डा० अनिल कुमार जैन, उप निदेशक, आगार अध्ययन संस्थान, अहमदाबाद, ने दो जिज्ञासा की हैं जो नीचे दी जा रही हैं। हमारा शास्त्र-मर्मज्ञ सुधि पाठकों से निवेदन है कि वह उनका समाधान हमें भेजने की कृपा करें :—

जिज्ञासा १ : सामान्यतः तीर्थंकरों की मूर्तियों में सिर के ऊपर केश बने पाये जाते हैं, जब कि दाढ़ी व मूँछ नहीं दिखाये जाते हैं। ऐसा क्यों है ? हमारे मुनि केशलोंच के समय दाढ़ी, मूँछ तथा सिर के सभी बालों का लोचन करते हैं तथा शास्त्रों में भी केशलोंच का जो वर्णन है उसके हिसाब से सिर के बालों का भी लोचन करना चाहिए। इस हिसाब से तीर्थंकर की मूर्ति के सिर पर केश नही दिखाये जाने चाहिए।

जिज्ञासा २ : मुनि महाराजों को आहार देने वाले श्रावक/श्राविकाओं को हमेशा धोती/साड़ी पहने देखा है। क्या श्रावक कुर्ता व पाजामा पहन कर तथा श्राविका कुर्ता व सलवार पहन कर आहार नहीं दे सकते हैं ? यदि नहीं, तो क्यों नहीं ? मैं समझता हूँ कि इन कपड़ों में भी श्रावक/श्राविका की सादगी बनी रहती है। धोती तथा साड़ी के साथ किसी सब्जी के तथा पानी में गिर जाने का भय भी बना रहता है। कुर्ता व पाजामा से सारा शरीर अच्छी तरह से ढ़क भी जाता है तथा कपड़े अपेक्षाकृत ढ़ीले न रहने के कारण पानी बगैरह में गिरने का भी डर नहीं रहता है तथा स्वच्छता भी रहती है। इसी प्रकार मूर्ति की प्रक्षाल के समय धोती की जगह साफ-सुथरे कुर्ता व पाजामा पहनने में कोई दिक्कत नहीं आनी चाहिए।

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ विद्वान श्री नीरज जैन, सतना, ने **सन्मति सन्देश**, जून १९९६, में प्रकाशित कतिपय प्रश्नोत्तरों पर अपनी प्रतिक्रिया दी हैं जो निम्नवत हैं :—

प्रश्न १ : फणावलियुक्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा क्या मुनि अवस्था की प्रतिमा है ?

समाधान (**सन्मति सन्देश**) : फणावली वाली पार्श्वनाथ की प्रतिमा मुनि अवस्था की है ।

श्री नीरज : मुझे लगता है कि यह समाधान कुछ और चिन्तन चाहता है । सदा से तीर्थंकर भगवन्तों की अर्हन्त अवस्था की ही प्रतिमाएं बनाने का प्रचलन रहा है । किसीं की भी मुनि अवस्था की प्रतिमा बनाने का कोई उल्लेख या प्राविधान मूर्ति शास्त्र में नहीं मिलता । मन्दिरों की परिक्रमा की दीर्घा में अवश्य कहीं कुछ आचार्य, मुनि या आर्यिका प्रतिमाएं बनी मिली हैं, पर वेदी पर नहीं ।

हुण्डावसर्पिणी के दुष्प्रभाव से तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर मुनि अवस्था में भयंकर उपसर्ग हुआ था । शासन यक्ष धरणेन्द्र ने उपसर्ग निवारण के राग वशात भगवान के सिर पर अपना फण फैला लिया था । इसी असाधारण घटना की स्मृति-स्वरूप पार्श्व प्रतिमाओं पर फणावली बनाने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है । मूर्तियाँ वे सब अर्हन्त अवस्था की हैं । मुनि अवस्था की नहीं हैं । इस धारणा के दो कारण हैं–

१. मुनि अवस्था की मूर्ति में पिच्छी-कमण्डलु का अंकन आवश्यक होता है । पार्श्व प्रतिमाओं में वह कहीं दिखाई नहीं देता ।

२. अर्हन्त अवस्था की प्रतिमाओं में छत्र, चामर, सिंहासन, भामण्डल आदि प्रातिहार्य बनाये जाते हैं । प्रातिहार्य युक्त मूर्ति को अर्हन्त प्रतिमा ही मानना होगा । उसे मुनि अवस्था की मूर्ति नहीं कहा जा सकता । प्रायः सभी प्रचीन पार्श्व प्रतिमाओं में फणावली के साथ ये प्रातिहार्य भी मिलते हैं, तब उसके अर्हन्त प्रतिमा होने में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए । बाद में फणावली युक्त, परन्तु प्रातिहार्य रहित मूर्तियाँ भी बनने लगीं, पर वे परम्परानुसार अर्हन्त अवस्था

की ही मूर्तियाँ होंगी । उन्हें मुनि अवस्था की मूर्ति नहीं कहना चाहिए ।

समंतभद्र स्वामी ने अपने **वृहद स्वयंभू स्तोत्र** में "फणावली युक्त पार्श्व जिनेश" की ही वन्दना की है । इसके बाद तो प्रायः सभी आचार्यों ने ऐसी सभी ऐतिहासिक मूर्तियों के निर्माण को प्रोत्साहित किया है, समर्थन दिया है या उन्हें अर्हन्त प्रतिमा के रूप में स्वीकार करके उनकी वन्दना की है । इससे भी सिद्ध है कि फणावली युक्त पार्श्व प्रतिमा भगवान की अर्हन्त अवस्था की पूज्य प्रतिमा है । वह केवल फणावली युक्त होने से मुनि प्रतिमा नहीं हो जाती ।

प्रश्न २ : बाहुबली मुनिराज ने कितने वर्ष तपस्या की ?

समाधान **(सन्मति सन्देश)** : तपस्या तो अन्तर्मुहूर्त की किन्तु एक वर्ष तक तप धारण करके विकल्प में अटके रहे ।

श्री नीरज : मुझे लगता है यह समाधान भी खुलासा चाहता है । प्रश्न यह है कि तपस्या का अर्थ क्या है । 'सन्मति सन्देश' के उत्तर से तो ध्वनित होता है कि सविकल्पक दशा का नाम तप-धारण है और निर्विकल्पक दशा का नाम तपस्या है । पर ऐसी मान्यता का कोई शास्त्राधार नहीं है तथा इसमें कुछ विसंगतियाँ उत्पन्न होने का भी प्रसंग आता है । इस पर अनेक दृष्टियों से विचार करना होगा ।

तप बारह प्रकार का है और वह सविकल्पक दशा का ही नाम है । तप भाव वाचक शब्द है और तपस्या उसी की कर्मवाचक संज्ञा है । दोनों में कोई वस्तुनिष्ठ या अर्थपरक अन्तर नहीं होता । इस प्रकार तप धारण का काल ही तपस्या का काल कहना होगा । अन्तर्मुहूर्त शायद इसलिए कहा गया कि अन्तिम कर्मदहन अन्तर्मुहूर्त में ही हुआ । पर यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि वह तप का नहीं ध्यान का प्रभाव है, और ध्यान अन्तर्मुहूर्त से अधिक का होता ही नहीं है । तप की क्रिया में तो सविकल्पक और निर्विकल्प दोनों दशा

बनेंगी। इसीलिए उसका काल असंख्यात अन्तर्मुहूर्त भी हो सकता है। इसमें कोई बाधा नहीं।

यदि विकल्प को तपस्या-वाह्य कोई वस्तु मान लेंगे तो उस समय नियम से गुणस्थान पतन मानना होगा। यदि पंचम या चतुर्थ गुणस्थान की कल्पना कर ली तो बाहुबली को हीयमान चारित्र का धारक और द्रव्यलिंगी मुनि कहना पड़ेगा जो वे नहीं थे। दूसरी बात है कि बाहुबली यदि एक वर्ष विकल्प में अटके रहे तो उनके पिताश्री भगवान ऋषभदेव को एक हजार वर्ष विकल्पों में उलझे रहने या अटके रहने का प्रसंग आएगा क्योंकि उनका तपस्या काल एक हजार वर्ष का था। इसीलिये स्व और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय आदि का चिन्तन करने रूप ध्यान और आसन आदि रूप तप की मिली-जुली प्रक्रिया ही वहाँ माननी होगी और बाहुबली का तपस्या काल एक वर्ष ही मानना होगा। उस बीच वे लगातार छठवें-सातवें गुणस्थानों में ही आरोह-अवरोह करते रहे। जब वही ध्यान स्व में अन्तर्मुहूर्त के लिए टिक गया तो केवलज्ञान की उत्पत्ति हो गई। तप, तपस्या और ध्यान, इन तीनों की परिभाषा को ठीक-ठीक समझ लेने पर ही इस शंका का समुचित समाधान मिल सकेगा।

टिप्पणी : फणावली युक्त पार्श्वनाथ प्रतिमा पर श्री नीरज का विवेचन एक परम्परा को सूचित करता है परन्तु वह परम्परा विशुद्ध सैद्धांतिक मापदण्ड पर सही नहीं उतरती, जैसा कि **शोधादर्श** २८ के पृ० ६९ पर टिप्पणी में इंगित किया गया है। इस बात की समीक्षा किया जाना अभीष्ट है कि पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं में इस प्रकार का विकार लाये जाने में क्या हेतु रहे। यह भी ध्यातव्य है कि बाहुबली की मूर्तियाँ मुनि अवस्था की हैं परन्तु उनमें पिच्छि-कमण्डलु का अंकन नहीं दिखता।

—रमा कान्त जैन

शोध-प्रबन्ध का सार-संक्षेप

पंचास्तिकाय का समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन

शोधकर्त्री : श्रीमती जैनमती जैन

निदेशक : डा० सी० डी० राय, एच० डी० जैन कालेज, आरा

[कुंवरसिंह विश्वविद्यालय, आरा, द्वारा पी-एच०डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

मोक्ष प्राप्ति की प्रक्रिया में तत्त्व-ज्ञान का विशिष्ट स्थान है। तत्त्व, द्रव्य, पदार्थ और अस्तिकायों के चिन्तन व मनन करने से स्व-पर का विवेक जागृत होता है, जिसके परिणाम स्वरूप राग-द्वेष रूप कषाय-अग्नि शनैः-शनैः क्षीण होने लगती है। ऐसा होने पर जन्म, जरा, मरण, संसार की असारता और भौतिकता की ओर से साधक विरक्त हो जाता है। अध्यात्म-मार्ग की अग्रतर साधना के लिए पांच अस्तिकायों का चिन्तन एवं मनन अमृत का कार्य करता है। कोई भी मुमुक्षु पांच अस्तिकायों का स्वरूप-लाभ किये बिना आध्यात्मिक-मार्ग के सोपानों पर आरूढ़ होने के लिए प्रवृत्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने संक्षिप्त रूचि वाले शिष्यों को प्रतिबोधित करने के लिए **पंचास्तिकाय** नामक शास्त्र की रचना की थी। अतः मोक्ष मूलक जैन धर्म में पांच अस्तिकायों का दार्शनिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक मूल्य सर्वाधिक है।

अस्तिकाय क्या हैं ? वे कितने हैं ? क्या कोई अनस्तिकाय भी हैं ? उनका क्या स्वरूप है ? परस्पर में उनका क्या सम्बन्ध है ? अध्यात्म से इनका क्या सम्बन्ध है ? उनमें कौन उपादेय एवं हेय हैं ? मोक्ष प्राप्ति में इनका क्या महत्व है ? इन विविध जिज्ञासाओं का समुचित समाधान करने का प्रयास इस शोध-प्रबन्ध में किया गया है।

युग संस्थापक आचार्यों में विश्रुत, भारतीय चिन्तक एवं आध्यात्मिक शिरोमणि आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा शौरसेनी प्राकृत भाषा

में निबद्ध **पंचास्तिकाय** में पांच अस्तिकायों, छः द्रव्यों और नौ पदार्थों का विस्तार से सर्वप्रथम विवेचन हुआ है। तत्त्व प्रारूपक साहित्य में इस कृति का मूल्य सर्वाधिक है। इस प्रकार की यह अनुपमेय कृति अन्वेषकों से अभी तक उपेक्षित रही। एम० ए० स्तर के एक लघु शोध-प्रबन्ध के अलावा किसी मनीषी विद्वान का इस पर कोई गवेषणात्मक लेख दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। इस कृति के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन में उल्लिखित जिज्ञासाओं के समुचित समाधान के साथ ही आचार्य कुन्दकुन्द के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व तथा काल निर्धारण की समस्या, **पंचास्तिकाय** की रचना का उद्देश्य, प्रतिपाद्य विषय और भाषा - शैली की विवेचना यहां की गई है। अध्ययन को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। अंत में परिशिष्ट के रूप में संदर्भ ग्रंथ सूची दी गई है।

पहले अध्याय में, 'ग्रन्थकार : व्यक्तित्व और कर्तृत्व' के अन्तर्गत, श्रुतधराचार्य और आचार्य कुन्दकुन्द का ऐतिहासिक सिंहावलोकन प्रस्तुत करते हुए भारतीय दार्शनिकों और प्राचीन ग्रन्थकारों में अपना अनुपमेय स्थान रखने वाले **पंचास्तिकाय** के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द का विश्लेषणात्मक परिचय प्रस्तुत करते हुए विविध साक्ष्यों से सिद्ध किया गया है कि उनका असली नाम पद्मनन्दि था और कुण्डकुण्डपुर नामक स्थान उनकी जन्म स्थली होने के कारण वे कुन्दकुन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। आचार्य कुन्दकुन्द के काल निर्धारण की समस्या के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत तथ्यों, साक्ष्यों एवं तर्कों का विश्लेषणात्मक एवं समलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए उन्हें ईसवी सन् प्रथम शताब्दी का आचार्य सिद्ध किया गया है। तदनन्तर कुन्दकुन्द द्वारा शौरसेनी प्राकृत भाषा में रचित ८४ ग्रन्थों (पाहुडों) की परम्परा का उल्लेख कर उनमें से उपलब्ध आध्यात्मिक एवं वैराग्य विषयक रचनाओं की विषय-वस्तु का विश्लेषण किया गया है। भाषा-शैली और विषय के आधार पर सिद्ध किया गया है कि **रयणसार, मूलाचार** और **कुरलकाव्य** उनकी कृतियाँ नहीं हैं। आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित अनेक मौलिक दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन भी किया गया है।

दूसरे अध्याय में, मूल स्रोत 'विषयानुबन्ध एवं टीका परिचय' के अन्तर्गत, आचार्य कुन्दकुन्द कृत **पंचास्तिकाय** का मूल स्रोत ज्ञान प्रवाद नामक पंचम पूर्व की दशवीं वस्तु का तीसरा प्राभृत सूचित करते हुए बताया गया है कि **पंचास्तिकाय** की रचना का उद्देश्य जिनोपदिष्ट तत्त्वों का ज्ञान करा कर मोक्ष मार्ग की प्रभावना करना रहा है । **पंचास्तिकाय** की समालोचनात्मक विषय वस्तु, **पंचास्तिकाय** की पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण, विभिन्न विशेषताओं के साथ **पंचास्तिकाय** के प्रकाशित संस्करणों, भाषा शैली का विवेचन एवं **पंचास्तिकाय** की भाषा का व्याकरणात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए **द्रव्य संग्रह** पर उसका प्रभाव यहां सिद्ध किया गया है । जैन दर्शन सम्मत द्रव्य के स्वरूप की तुलना जैनेतर भारतीय दार्शनिकों, विशेष कर न्याय-वैशेषिक मत, द्वारा मान्य द्रव्य के स्वरूप से की गई है । इसके साथ ही स्पिनोजा के द्रव्य के स्वरूप से भी तुलना की गई है। **पंचास्तिकाय** पर संस्कृत, कन्नड़ व हिन्दी भाषाओं में लिखी गयी डेढ़ दर्जन टीकाओं का परिचय भी दिया गया है ।

तीसरे अध्याय में, 'अस्तिकाय : स्वरूप, लक्षण तथा भेद' के अन्तर्गत, अस्तित्व के सामान्य अर्थ का उल्लेख करते हुए अस्तिकाय की परिभाषाओं का विश्लेषणात्मक विवेचन, अस्तिकाय के पांच भेदों, तथा अस्तिकाय और लोक का सम्बन्ध सूचित करते हुए बतलाया गया है कि लोक अकृत्रिम है । लोक और निवृत्ति मार्ग के सम्बन्ध का विवेचन भी किया गया है ।

चौथे अध्याय में, 'द्रव्य—स्वरूप एवं भेद विमर्श' के अन्तर्गत, द्रव्य वाचक शब्दों, द्रव्य के तीन लक्षणों, समीक्षात्मक स्वरूप, द्रव्य और सत्ता, द्रव्य और गुण, तथा द्रव्य और पर्याय के परस्पर सम्बन्ध का विवेचन कर द्रव्य के विस्तृत भेदों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

पांचवे अध्याय में, 'जीवास्तिकाय स्वरूप एवं भेद विमर्श' के अन्तर्गत, जीव के स्वरूप एवं भेदों का तुलनात्मक विवेचन कर स्पष्ट किया गया है कि जीव के स्वरूप का चिन्तन एवं मनन कर

ही व्यक्ति इस संसार-सागर से पार हो सकता है। मुक्त होकर जीव अनन्तवीर्य रूप चतुष्टय को प्राप्त कर लेता है।

छठे अध्याय में, 'अजीवास्तिकाय एवं काल द्रव्य : स्वरूप-भेद विमर्श' के अन्तर्गत, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश अस्तिकायों का और काल द्रव्य का समालोचनात्मक एवं तुलनात्मक स्वरूप तथा उनके भेदों का विवेचन किया गया है।

सातवें अध्याय में, उपसंहार स्वरूप, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के निष्कर्ष के रूप में **पंचास्तिकाय** के आन्तरिक अनुशीलन से प्राप्त तथ्यों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

सार रूप में, चूँकि **पंचास्तिकाय** एक वैराग्य विषयक ग्रन्थ है, इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द ने जीवादि द्रव्यों का स्वरूप प्रतिपादित करके बतलाया है कि एक मात्र जीव द्रव्य ही उपादेय है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्यों का कार्य जीव और पुद्गल द्रव्यों के कार्यों में मात्र सहायता करना है। **पंचास्तिकाय** में बतलाया गया है कि एक मात्र जीव ही शुद्ध चेतन स्वरूप अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप, अविनाशी, असंख्यात प्रदेशी एवं सत् स्वरूप है। पुद्गल द्रव्य के संयोग से जीव अपने स्वरूप को भूल कर संसार में रागादि विभागों से युक्त नरक आदि समस्त गतियों में भ्रमण करता रहता है। यही कारण है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने वैराग्य विषयक इस ग्रन्थ में जीव को सांसारिक पर्यायों में निर्ममत्व और उदासीन रहने का, तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल को हेय बतला कर चेतन स्वरूप शुद्ध जीव का चिन्तन और मनन करने का, उपदेश दिया है। शुद्ध जीव का चिन्तन करने से संसार चक्र के भ्रमण से छुटकारा मिल सकता है। कहा भी है कि — 'अनन्त ज्ञानादि गुणधारी शुद्ध आत्मा शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्पों के समय सब तरह से उपादेय अर्थात् ध्यान देने योग्य है। सर्वोत्कृष्ट एवं परम पवित्र सिद्धात्मा के समान मैं हूँ।' —ऐसा ध्यान करना चाहिए। जब जीव रागादि

(शेष पृष्ठ १७२ पर)

पर्यावरण और जीवदया

शोधादर्श २७ व २८ में 'मूक पशु की आवाज' के अन्तर्गत पर्यावरण और पारिस्थितिक सन्तुलन के परिप्रेक्ष्य में पशु-वधशालाओं के विरोध में भारतीय संविधान के प्राविधान, पं० जवाहर लाल नेहरू के विचार और दिल्ली के उप-न्यायाधीश श्री सी० के० चतुर्वेदी के ईदगाह की पशु-वधशाला को नरेला में स्थापित करने की सरकारी योजना पर प्रतिबन्ध-आदेश से प्रासंगिक अंश दिये गये हैं। अपनी विचारणा की पुष्टि में श्री चतुर्वेदी ने श्री जी० एफ० एलेक्ज़ेंडर की एक कविता भी उद्धृत की है। श्री एलेक्ज़ेंडर की अंग्रेजी में रचित उक्त कविता का हिन्दी रूपान्तर **डा० शैलनाथ चतुर्वेदी** द्वारा प्रस्तुत है :—

।। भगवान ने बनाया एक समान ।।

जो कुछ भी आकर्षक सुन्दर, चारों ओर हमारे,
जीवन जगत में लघु विशाल, पशुपक्षी हैं जो सारे।
चित्र विचित्र, बुद्धि बलशाली, लगते जो भी न्यारे,
परम पिता की कृति यह सारी, जिसे देखते प्यारे ।।

फूट रहा हर फूल जहाँ भी, जो भी पक्षी गाते,
रंग बिरंगा रूप मिला जो, छोटे पंख सुहाते।
दिया उसी का, किया उसी का जो भी जग ने पाया,
उसी पिता की छवि निखरी है, सभी उसी की माया ।।

रंग बैंगनी सिर का जिसके ऐसी पर्वतमाला,
कल-कल करती नदियां बहतीं, जिनका रूप निराला।
ऊषाकाल की सुन्दरता औ सन्ध्या का उजियारा,
दिशा-दिशा उज्जवल हो उठती, गगन चमकता सारा ।।

वन-उपवन में लम्बे-लम्बे वृक्ष दिखायी देते,
शिशिर काल में सूर्य देवता कितना है सुख देते ।
वृक्षों की शोभा तो देखो, फल से लदे हुए हैं,
सबकी डोरी उसके हाथों, जिससे बंधे हुए हैं ।।

उसने हमको आंखे दी हैं, देखें हम जग सारा,
ओठ दिये गुणगान करें उसका, जो पिता हमारा ।
वह कितना महान बलशाली, कैसा है निर्माता,
जो कुछ रचा मनोहर सुखकर, धन्य-धन्य हे त्राता ।।

आशय यह है कि इस चराचर जगत में हम जो कुछ भी देखते हैं और जो कुछ भी बहुरंगी सौन्दर्य स्वरूप हमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और पर्वत-नदी-समुद्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जब हम उसके बनाने वाले नहीं हैं तो हमें उसको बिगाड़ने–पशु-वध करने अथवा वन सम्पदा को नष्ट करने–का कोई नैतिक अधिकार नहीं है ।

——

(पृष्ठ १७० का शेष)

विभावों से रहित हो जाता है तो वह अपने समस्त कर्मों को नष्ट कर मुक्त हो जाता है और स्वाभाविक अनंत सुख का अनुभव करने लगता है । आचार्य कुंदकुंद ने अन्य दार्शनिकों की तरह न तो मोक्ष को अभाव रूप और ना ही जड़ रूप माना है । दूसरे शब्दों में, मोक्ष प्राप्त होने पर जीव की सत्ता विद्यमान रहती है । वह अनंत चतुष्ट्य रूप परिणमन करता रहता है । अतः संसारी जीव को मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । ★

इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन स्मृति दिवस

इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डा० ज्योति प्रसाद जैन की आठवीं पुण्यतिथि पर ११ जून, १९९६, को लखनऊ में उनकी पावन स्मृति में काव्य संध्या का आयोजन किया गया। वरिष्ठ साहित्यकार और ब्रजभाषा के प्रखर हस्ताक्षर श्री गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी ने अध्यक्षता की, तरूण कवि कमल किशोर तिवारी 'भावुक' ने संचालन किया और श्री गौरीश श्रीवास्तव ने वाणी वन्दना की।

डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण और सरस्वती की मूर्ति के समक्ष दीप-प्रज्वलन से गोष्ठी का शुभारम्भ हुआ। मंगलाचरण-स्वरूप डाक्टर साहब की रचनाओं का सस्वर पाठ और कविवर ताराचन्द्र 'प्रेमी' की काव्याञ्जलि 'इतिहास-मर्मज्ञ ज्योति प्रसाद' का गायन किया गया। श्री अजित प्रसाद जैन ने ७० वर्ष के सुदीर्घ साहचर्य के आधार पर अपने अग्रज स्व० डाक्टर साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व का समाकलन किया। श्री राजेन्द्र कुमार जैन, (महासचिव, एसोसियेटेड चैम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इंडस्ट्री ऑफ उत्तर प्रदेश), ने स्व० डाक्टर साहब के मार्गदर्शन में **वीर** का सम्पादन करने सम्बन्धी अपने अनुभवों की चर्चा करते हुए भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

विविध विधाओं में सुधि श्रोतागण को काव्यसुधारस पान कराने वाले प्रातिभ स्वर थे—कु० भारती भारतवर्ष, सर्वश्री गौरीश, 'भावुक', डा० महावीर प्रसाद जैन, घनानन्द पाण्डे, अनन्त प्रकाश तिवारी, राम नारायण त्रिपाठी 'पर्यटक', रमा कान्त जैन, काशीनाथ गोपाल गोरे, वीरेन्द्र गुप्त 'अंशुमाली', संकटा प्रसाद श्रीवास्तव 'बन्धुश्री', चन्द्र भूषण शुक्ल, शिव भजन 'कमलेश', रवि कुमार अवस्थी और डा० शशि कान्त। काव्य संध्या का समापन अध्यक्ष श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी के ब्रजभाषा में रचित सरस छन्दों के साथ हुआ।

उक्त अवसर पर डा० महावीर प्रसाद जैन द्वारा प्रस्तुत भावांजलि :

विद्यावारिधि ज्योति-पुंज जय ज्योति प्रसाद नमन है।
पुण्य दिवस पर याद तुम्हारी फिर आयी पावन है।

तपः पूत निर्मल जीवन के संत तुम्हारी वाणी,
भूल न पाते रही सदा ही जो जीवन-कल्याणी,
'ज्योति निकुंज' आज भी ज्योतित, प्रभा तुम्हारी अनुपम है।
पुण्य दिवस पर याद तुम्हारी फिर आयी पावन है।

कर्मठ योगी लिखते ही तुम रहे अथक जीवन भर,
तुम नहीं आज पर कालजयी रचनाएं तो हैं अविनश्वर,
भूल सकेगा कभी न युग जो कुछ भी तुमने किया सृजन है।
विद्यावारिधि ज्योति-पुंज जय ज्योति प्रसाद नमन है।

साथ तुम्हारा कठिन धूप में जैसे संग सजल घन था,
अथवा जग-तापित मन के हित जैसे कोई मधुबन था,
और तुम्हारी स्मृति ही अब दुखते मन का अवलम्बन है।
पुण्य दिवस पर याद तुम्हारी फिर आयी पावन है।

स्मृति दिवस तुम्हारा हम सबकी श्रद्धा का परिचायक है,
शशिकांत जी, रमाकांत जी जिसके प्रतिपल संवाहक हैं,
और इसी स्मृति-संध्या में आयोजित कवि सम्मेलन है।
विद्यावारिधि ज्योति-पुंज जय ज्योति प्रसाद नमन है।
पुण्य दिवस पर याद तुम्हारी फिर आयी पावन है।

——

साहित्य सत्कार

अजिताश्रम पाठावली – सम्पादक–श्री कैलाश भूषण जिन्दल व अन्य; अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ-१८; पृष्ठ २८८ ; मूल्य रु० २५/-

धर्मनिष्ठ स्व० पं० अजित प्रसाद जी एडवोकेट (निधन १९५१ ई०) अपने समय के जैन समाज के शीर्षस्थ सुधारवादी नेताओं में से थे। अंग्रेजी व संस्कृत भाषा पर उनका समान रूप से अधिकार था। सन् १९२७ में उन्होंने निज "अजिताश्रम", गणेशगंज, लखनऊ, में ब्र० शीतल प्रसाद जी की प्रेरणा से एवं मार्गदर्शन में **अजिताश्रम चैत्यालय** की स्थापना की थी। उक्त मन्दिर जी में नित्य नियम से पढ़ी जाने वाली पूजाओं-स्तोत्रों आदि का संकलन पूजार्थियों एवं दर्शनार्थियों की सुविधा के लिए उपलब्ध कराने की दृष्टि से एक ७२-पृष्ठीय **अजिताश्रम पाठावली** का प्रकाशन सन् १९३५ ई० में किया गया। उसमें सब पाठ संस्कृत में ही थे क्योंकि अजित प्रसाद जी को संस्कृत पाठ अधिक प्रिय थे। इन पंक्तियों के लेखक को भी पं० अजित प्रसाद जी के जीवन के अन्तिम ११ वर्षों में उनके वात्साल्यपूर्ण सानिध्य का तथा अजिताश्रम चैत्यालय में नित्य देव-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

अजिताश्रम पाठावली का यह दूसरा संस्करण इस वर्ष परिवर्द्धित रूप में प्रकाशित किया गया है। इससे पूर्व की संस्कृत पूजाओं के साथ उनके हिन्दी रूपान्तर, कुछ अधिक लोक प्रिय नौ तीर्थंकरों की पूजाएं, पर्व पूजाएं तथा कुछ अधिक पढ़े जाने वाले स्तोत्रों, स्तुतियों आरतियों, सामयिक पाठ, सिद्धि सोपान, बारह भावना आदि का समावेश कर इसे सर्वोपयोगी बना दिया गया है। यदि इसमें रक्षा-बन्धन पूजा का भी समावेश कर दिया जाता तो फिर एक सामान्य धर्मनिष्ठ श्रावक को किसी और पूजा संग्रह की आवश्यकता नहीं रह जाती।

धार्मिक आस्था की नींव इतनी दृढ़ होती है कि श्रद्धालु जन परम्परागत पाठ में मुद्रण आदि के दोष से यदि कुछ भयंकर

अशुद्धियां भी रह जाएं तो वे पाठ के अर्थ पर विचार किए बिना उस अशुद्ध पाठ को ही शुद्ध मान कर पढ़ते रहते हैं। कवि द्यानतराय की अत्यधिक लोक प्रिय देव-शास्त्र-गुरू पूजा में भी हमारी समझ में कुछ ऐसी असंगत अशुद्धियां प्रचलन में आ गई हैं जिनकी पुनरावृत्ति हमें प्रायः सभी जिनवाणी संग्रह के संकलनों में (चाहे वह भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ हो या टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से या किसी प्रख्यात विद्वान के सम्पादन में) देखने में आई हैं, जैसे —

	अशुद्ध प्रचलित पाठ	**शुद्ध पाठ**
(i)	चन्दन के अर्घ में	
(क)	तसु भ्रमर लोभित घ्राण **पावन** सरस चन्दन घिसि सचूं	···**बावन** सरस चन्दन··· ('बावन' चन्दन की सर्वोत्तम किस्म होती है)
(ख)	·····**तपत वस्तु** परवीन	·····**तपन हरन** परवीन
(ii)	पुष्प का अर्घ	
	पहुप	**पुहुप**
(iii)	अर्घ	
	·····**भवि करत** शिव पंकति मंचु	·····**भक्ति रत** शिव पंकति मंचु

इस पाठावली के सम्पादक श्री कैलाश भूषण जिन्दल हिन्दी भाषा के पंडित हैं तथा रूढ़िवादी भी नहीं हैं। अस्तु इन अशुद्धियों का इस पाठावली में भी निराकरण न किये जाने से विस्मय होता है। फिर भी इस पाठावली में प्रायः सभी पाठ शुद्ध हैं तथा मुद्रण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया गया है। पक्की जिल्द व सुन्दर छपाई के साथ मूल्य लागत मात्र ही रखा गया है। सम्पादक मंडल इस उपयोगी प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

ग्वालियर गौरव गोपाचल – ले०–श्री रामजीत जैन एडवोकेट ; प्र० श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गोपाचल पर्वत न्यास, पार्श्वनाथ वनस्थली, फूलबाग के पास, ग्वालियर-४७४००२ ; वर्ष १९९६; पृष्ठ १०८ ; मूल्य रु० ५१/-

विन्ध्यगिरि पर्वत श्रेणी की एक ३०० फुट ऊंची गोपाचल पहाड़ी व उस पर निर्मित ग्वालियर का किला प्राचीन कलात्मक जैन मूर्ति समूह का एक अद्वितीय स्थल है जहाँ हजारों विशाल एवं भव्य दिगम्बर जैन मूर्तियों का निर्माण मुख्यतया वि० सं० १३९८ से वि० सं० १५३६ के बीच तोमरवंशी राजाओं के शासन काल में, २१ गुहा मन्दिरों सहित, पर्वत को तराश कर किया गया था। मुगल सम्राट बाबर की विजय वाहिनी द्वारा भारी संख्या में दिगम्बर मूर्तियों को खंडित व विध्वंस करने के बावजूद कतिपय मूर्तियो को उनके अतिशय से आतंकित होकर क्रूर विधर्मी आक्रान्ता खंडित नहीं कर सके। भगवान पार्श्वनाथ की ऐसी ही विश्व की सबसे विशाल ४२ फुट ऊंची पद्मासनस्थ सातिशय मूर्ति है तथा भगवान आदिनाथ की ५७ फुट उत्तुंग खड्गासन मूर्ति है जो बावन-गजा के नाम से विख्यात है। यहाँ पर वर्तमान में उपलब्ध जैन मूर्तियों की संख्या लगभग १५०० है जो ६ इंच से लेकर ५७ फुट तक की हैं। वस्तुतः इसे जैन धर्म का गढ़ कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गोपाचल (वर्तमान ग्वालियर) दुर्ग का कब निर्माण कराया गया, इसके विषय में कोई प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती, केवल इतना ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी में इसका अस्तित्व था तथा ७वीं–८वीं शताब्दी से यह जैन संस्कृति एवं कला से सम्बद्ध रहा है। १०वीं से १८वीं शताब्दी तक यह दिगम्बर जैन भट्टारकों की एक प्रमुख पीठ रहा था।

गोपाचल दुर्ग अतिशय क्षेत्र तो है ही, विद्वान लेखक इसे २१वें तीर्थंकर भगवान नमिनाथ के तीर्थ में जन्मे सुप्रतिष्ठ केवली की निर्वाण स्थली भी मानते हैं।

विभिन्न जैन जातियों (बरैया, जैसवाल, खरौआ, विजयवर्गीय व गोलालारे) के इतिहास ग्रन्थों के निर्माता विद्वान लेखक जो स्वयं ग्वालियर के निवासी हैं, ने इस पुस्तक में गोपाचल पर्वत के जैन

संस्कृति एवं कला वैभव का प्रथम बार सुव्यवस्थित परिचय प्रस्तुत किया है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

पार्श्वनाथ चरित्र – ले०-श्री लालचन्द हरिश्चंद मानवत; प्रकाशक-भगवान महावीर रिसर्च सेन्टर, श्राविका संस्थानगर, सोलापुर-४३१००२; पृष्ठ ६४

विद्वान लेखक ने इस लघु ग्रन्थ में पूर्व पुराणकारों के आधार से २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन चरित्र पांच पूर्व भवों के वर्णन सहित (अर्थात तब से जबकि कमठ ने अपने छोटे भाई मरुभूति की वैरवश पत्थर की शिला से हत्या की थी), संक्षेप में प्रस्तुत किया है तथा यह दर्शाया है कि किस प्रकार कमठ के जीव ने पांच भवों तक अपना वैर जारी रखा तथा भगवान पार्श्वनाथ का जीव उसके उपसर्गों को समता पूर्वक सहता रहा। इस चरित्र ग्रन्थ में भगवान पार्श्वनाथ के दीक्षा एवं ज्ञान कल्याणक वाराणसी नगर के उपवन में सम्पन्न हुए बतलाये गये हैं जबकि अहिच्छत्र लोक में कमठ के उपसर्ग तथा भगवान पार्श्वनाथ के ज्ञान कल्याणक के लिए विख्यात है। राजस्थान के बिजौलिया पार्श्वनाथ तीर्थ क्षेत्र के लिए भी भगवान के ज्ञान कल्याणक की भूमि होने का दावा किया जाता है। अच्छा होता यदि पुस्तक में या उसकी प्रास्तावना में जो विख्यात जैन पुरातत्वविद श्री नीरज जी के द्वारा लिखी गई है, इस सम्बन्ध में तथा भ० पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता के विषय में भी प्रकाश डाला जाता, विशेषकर जबकि यह चरित्र ग्रन्थ एक जैन रिसर्च सेन्टर द्वारा प्रकाशित किया गया है।

विश्व के कीर्ति स्तम्भ नव गजरथ – सम्पादक–बा० ब्र० श्री अजित जी सौंरई; प्रकाशक–सर्वोदय महासमिति, ललितपुर

पू० आचार्य विद्यासागर जी के सुशिष्य तरुण मुनि पू० श्री सुधासागर म० की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में देवगढ़ क्षेत्र (जिला ललितपुर) की लगभग ५०० मूर्तियों के जीर्णोद्धार–नवीकरण के उपरान्त दिसम्बर १९९३ में ललितपुर में नव गजरथ सहित पंच

कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुए। उस उपलक्ष्य में इस भव्य स्मारिका का प्रकाशन किया गया है।

स्मारिका ९ खण्डों में विभक्त की गई है — खण्ड (१) में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की परम्परा, उपयोगिता, आवश्यकता एवं महत्व पर कतिपय विख्यात प्रतिष्ठाचार्यों के लेखों का संकलन है। अपने लेख "पंच कल्याणकों में व्यर्थ अर्थ व्यय पर एक विचार" में ऐलक रयणसागर जी ने गजरथ–पंच कल्याणकों में होने वाले व्यय की आलोचना करने वालों को कड़ी फटकार लगाई है।

खण्ड (२) में नव गजरथ महोत्सव पर एक रिपोर्ट सहित पंच कल्याणकों पर मुनि सुधासागर जी के प्रवचनांश संकलित हैं। खण्ड (३) में महोत्सव की फोटो चित्रों में विहंगम झांकी प्रस्तुत की गई है। खण्ड (४) पद्यमंजरी में महोत्सव पर कुछ कविताओं को प्रस्तुत किया गया है। खण्ड (५) में मुनि जी के विभिन्न मुद्राओं में भव्य फोटो चित्र तथा उनके परिचय व गुणानुवाद सम्बन्धी लेख हैं। खण्ड (६) में ललितपुर के श्री आदिनाथ बड़ा मन्दिर की चित्रावली तथा मुनि सुधासागर व उनके गुरु आचार्य विद्यासागर जी की कुछ अध्यात्मिक कविताएं हैं। खण्ड (७) में ललितपुर के अन्य सभी दिगम्बर जैन मन्दिरों का परिचय व चित्रावली है। खण्ड (८) में पंच गजरथ महोत्सव तथा सप्त गजरथ महोत्सव अशोक नगर का विवरण है। एक लेख में मुनि श्री की प्रेरणा एवं मार्ग दर्शन में देबगढ़ क्षेत्र की लगभग ५०० मूर्तियों के जीर्णोद्धार–नवीकरण पर प्रकाश डाला गया है। अच्छा होता यदि इस खण्ड में कुछ मूर्तियों एवं मन्दिरों के चित्र–जीर्णोद्धार से पूर्व तथा जीर्णोद्धार-नवीकरण के उपरान्त के भी दे दिये जाते। खण्ड (९) राजस्थान खण्ड है।

प्रतिष्ठा महोत्सवों आदि के उपलक्ष में प्रकाशित स्मारिकाओं में अपनी भव्यता व विशालता के कारण प्रस्तुत स्मारिका का विशेष महत्व रहेगा। पृष्ठों की संख्या अंकित किया जाना अभीष्ट था।

सागर मन्थन — प्रवचनकार–आचार्य विद्यासागर ; प्रकाशक–श्रीमती पुष्पा देवी, धर्मपत्नी श्री सुभाष चन्द्र जैन, जैन गली, हिसार (हरियाणा); १९९५; पृष्ठ ३६०

इस ग्रन्थ में अध्यात्म योगी आचार्य विद्यासागर म० के कतिपय प्रवचनों का सार संकलन प्रस्तुत किया गया है। आचार्य श्री सिद्ध कवि चिन्तक एवं साधक हैं। उनकी प्रवचन शैली अनूठी है जो सीधे हृदय को छूती है। ग्रन्थ के अन्त में आचार्य श्री द्वारा रचित कुछ दोहे ९ पृष्ठों में दिये गए हैं।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन आचार्य श्री की सुशिष्या आर्यिका दृढ़मती माता जी की प्रेरणा से श्रीमती पुष्पा देवी जैन (हिसार) ने अपने स्वर्गीय श्वसुर की पुण्य स्मृति में करके निज द्रव्य का सदुपयोग किया है जिसके लिए वे बधाई की पात्र हैं।

वाग्दीक्षा–स्वरूप एवं महत्व – अक्षर पुञ्ज–आचार्य विद्यानन्द मुनि; लेखक–डा० सुदीप जैन; प्रकाशक–श्री कुन्दकुन्द भारती, १८-बी स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-११००६७; १९९५; पृष्ठ ३६; मूल्य रु० २.५०

पूज्य आचार्य विद्यानन्द मुनिराज का कथन है कि जैन आगमों के अनुसार केवल मुनि दीक्षा ग्रहण करने से ही कोई श्रमण सार्वजनिक प्रवचन करने का अधिकारी नहीं हो जाता। प्रवचनकार के लिए जानकार होना भी आवाश्यक है। अतः जब तक दीक्षित अनगार श्रमण ज्ञान के प्रकर्ष पूर्वक प्रवचन कला में विशारद नहीं हो जाते तब तक गुरु को उन्हें जनसमुदाय में उपदेश देने की अनुमति प्रदान नहीं करनी चाहिए। गुरू प्रवचन करने के अधिकार मुख-शुद्धिकरण (या वाग्दीक्षा) के द्वारा प्रदान करते हैं। इस पुस्तिका में विद्वान लेखक ने वाग्दीक्षा के स्वरूप, महत्व एवं विधि पर प्रकाश डाला है।

कीर्ति-स्तम्भ — सम्पादक–डा० अरुण कुमार शास्त्री; प्रकाशक-श्री दिगम्बर जैन समिति, अजमेर; मूल्य रु० १८५/-

ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है। खण्ड (१) में दि० १३–१५ अक्टूबर १९९४ को अजमेर में आचार्य ज्ञानसागर कृत 'वीरोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अनुशीलन' विषय पर मुनि सुधासागर जी के सानिध्य में आयोजित विद्वत गोष्ठी में पढ़े गए इस महाकाव्य के विभिन्न पक्षों पर लेखों का संकलन १८४ पृष्ठों में प्रस्तुत है। खण्ड (२) में ४८ पृष्ठों में मुनि सुधासागर जी के अजमेर चातुर्मास १९९४ में आयोजित विविध कार्यक्रमों का विवरण, मुनिश्री के प्रवचनांश एवं चतुर्मास की भव्य चित्रावली दी गई है। खण्ड (३) भी मुनि सुधासागर जी को समर्पित है। इसमें मुनिश्री की विभिन्न मुद्राओं में चित्रावली सहित उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है तथा उनकी भक्ति में रचे गये गीतों का संकलन है। खण्ड (४) में अजमेर के जिनालयों का परिचय दिया गया है। खण्ड (५) में भी अजमेर चातुर्मास १९९४ में मुनि श्री के सानिध्य में सम्पन्न इन्द्रध्वजमण्डल विधान का विवरण दिया गया है। स्मारिका बड़ी भव्य तथा चित्रावली से अलंकृत हैं।

विद्याष्टकम् – रचयिता–डा० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'; प्र० श्री भागचन्द्र जैन इटौरिया न्यास, दमोह ; पृष्ठ १५

इस पुस्तिका में मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी के सचिव एवं जैन जगत के जाने-माने विद्वान डा० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' ने कवि भागचन्द्र कृत सुप्रसिद्ध स्तोत्र महावीराष्टक की तर्ज पर शिखरणी छन्द में निबद्ध संस्कृत भाषा के आठ श्लोकों में सन्त शिरोमणी आचार्य विद्यासगर जी महाराज के चरणों में अपने भक्ति प्रसून अर्पित किये हैं। आचार्य जी का निर्दोष चरित्र तथा बहु आयामी व्यक्तित्व बरबस भक्त जनों को अपनी भक्ति कविता में मुखरित करने के लिए प्रेरित करता है।

आजकल हमारे आचार्यों, मुनियों व आर्यिकाओं की भक्ति में स्तवन-स्तोत्र व भक्ति गीत रचे जाने की बाढ़ सी आ गई है। आचार्य

श्री विद्यासागर जी के गुरू महाराज की भक्ति में रचित श्री ज्ञान सागर दशकम् स्तोत्रम्, आचार्य श्री के ही शिष्य मुनि सुधा सागर की भक्ति में रचित सुधासागर पञ्चकम् स्तोत्रम् तथा भक्ति गीत – सुधासागर अष्टक, सुधासागर स्तवन, आदि अभी हाल में **कीर्ति-स्तम्भ** स्मारिका में छपे हैं, कुछ अन्य आचार्यों, मुनियों, आर्यिका माताओं के भी भक्ति गीत, स्तोत्र-स्तवतन देखने में आये हैं। हमें आश्चर्य होता है कि प्राचीन काल में जो महान् तपस्वी शासन-प्रभावक आचार्यों की भक्ति में रचित स्तोत्र क्यों नहीं मिलते ? क्या उनके शिष्यों में गुरू-भक्ति की भावना इतनी उत्कट नहीं थी या फिर उन गुरूओं में ही यश-ख्याति के प्रति उपेक्षा थी ?

परम पूजांजलि — प्रणेता : कविरत्न सुरेन्द्र सागर प्रचण्डिया; प्रकाशक–श्री प्रचण्डिया जैन दान पीठ, कुरावली; १९९५–९६ पृष्ठ १८६; मूल्य रु० १५/-

जैन जगत के जाने-माने कवि सुरेन्द्र सागर प्रचण्डिया जी की यह कृति दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में कविवर द्वारा रची १० पूजाएं तथा कुछ स्फुट रचनाएं हैं। भाग–२ में पांच (संस्कृत-अपभ्रंश से) अनूदित पूजाएं तथा कविवर की कुछ अन्य स्फुट रचनाएं दी गई हैं। अलंकार योजना तथा भावों की सरल सहज अभिव्यक्ति की दृष्टि से सभी पूजाएं उत्तम हैं तथा गेय हैं। यदि इस संग्रह को पक्की जिल्द में प्रस्तुत किया जाता तो यह अधिक उपयोगी होता क्योंकि पूजा-पाठ संग्रहों का पूजक प्रतिदिन उपयोग करते हैं जिसके कारण बिना जिल्द की ऐसी पुस्तकें शीघ्र ही फट जाती हैं।

संत-सौरभ – ले०–नीरज जैन; प्रकाशक–श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा, नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स, ऐशबाग, लखनऊ; प्रथमावृत्ति–जनवरी १९९६; पृष्ठ-८४; मूल्य रु० १५/-

महासभा के शताब्दि समारोह वर्ष में प्रकाशित इस पुस्तक में जैन जगत के जाने-माने विद्वान एवं सिद्ध हस्थ लेखक श्री नीरज जैन

ने मोक्षमार्ग के ऐसे २३ साधकों (दि० जैन आचार्यों, मुनियों, आर्यिकाओं एवं छुल्लकों) के परिचय, संस्मरण आदि प्रस्तुत किए हैं जिनके सत्संग का उन्हें समय-समय पर सौभाग्य प्राप्त हुआ। संतों के संस्मरण सदा ही प्रेरणास्पद होते हैं, तिस पर नीरज जी की वर्णन की रोचक शैली ने सोने में सुहागा का काम किया है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

गोलापूर्व जैन समाज : इतिहास एवं सर्वेक्षण—सम्पादक—श्री सुरेन्द्र कुमार जैन; प्रकाशक—पारस शोध संस्थान, वर्णी वाचनालय भवन, सागर; १९९६; पृष्ठ-२६९; मूल्य रु० १००/-

जैन संस्कृति मूलतः जातिवाद का विरोध करती है तथा लगभग पांचवीं-छठी शताब्दि तक जैन धर्म में जाति-वर्ण-मुक्त सामाजिक व्यवस्था निर्विवाद रूप से मिलती है तथा उस समय तक जैन धर्म के अनुयायियों में चारो वर्णों के लोग सम्मिलित थे। किन्तु कालान्तर में ब्राह्मण धर्म के प्रभाव से जैन धर्म में भी संघ, अन्वय, जाति आदि का वर्चस्व होने लगा। मुख्यतः बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली गोलापूर्व जाति का उद्गम-स्थल महोबा कहा जाता है जहाँ से यह सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शनैः-शनैः फैल गई। इस धर्म परायण जाति को अनेक दिगम्बर जैन मुनिराज, आर्यिकाएं एवं धर्मज्ञ विद्वान देने का गौरव प्राप्त है तथा इसने अपना वर्चस्व विद्वत्ता, प्रशासन, समाज सेवा, राजनीति, स्वतन्त्रता संग्राम आदि सभी क्षेत्रों में बनाये रखा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है। खण्ड-१ में इस जाति का इतिहास, प्रतिमा लेख एवं यंत्र लेख दिये गये हैं, खण्ड-२ में इस जाति में उत्पन्न साधु वृन्द, विशिष्ट विद्वानों एवं समाज सेवियों का परिचय दिया गया है, तथा खण्ड-३ में इस जाति की जन गणना दी गई है। लेखन उच्च स्तरीय है तथा प्रस्तुत सामग्री का संकलन बड़े परिश्रम से किया गया है जिसके लिए विद्वान सम्पादक बधाई के पात्र हैं। जैन जातियों के इतिहास की शृंखला में यह ग्रन्थ एक

उत्तम इतिहास ग्रन्थ है तथा पुस्तकालयों आदि के लिए संग्रहणीय है।

—अजित प्रसाद जैन

क्रान्तिदूत — रचयिता श्री गौरीश श्रीवास्तव; मनीष प्रकाशन, ई०डी० १०७, सचिवालय कालोनी, मोतीझील, लखनऊ-२२६००४; १९९६; पृष्ठ ७६ + आवरण; मूल्य रु० ७५/-

वाणी-स्तवन से प्रारम्भ कर, पाँच सर्गों में, खड़ी बोली में, घनाक्षरी छन्द में, तथ्यों की लक्ष्मण रेखा के इर्द-गिर्द गूंथी गयी, अमर शहीद चन्द्र शेखर आजाद की जीवन गाथा **क्रान्तिदूत** प्रबन्ध काव्य की विषय वस्तु है। प्रसंगानुकूल सहज और सरल शब्दों व मुहावरों का प्रयोग करते हुए तथा उपन्यास जैसी रोचकता उत्पन्न करते हुए प्रवाहपूर्ण शैली में अपने प्रणम्य को यह काव्यांजलि प्रस्तुत करने में कवि गौरीश ने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया है उसके लिये वह बधाई के पात्र हैं। कहीं-कहीं कुछ मुद्रणीय त्रुटियों को छोड़कर, मुद्रण-प्रकाशन उत्तम हुआ है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

—रमा कान्त जैन

देह से विदेह की ओर — ले० डा० अम्बा प्रसाद 'सुमन'; सं० डा० कमल सिंह व डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा; प्र० वासन्ती प्रकाशन, ए-८७, विवेक नगर, सहारनपुर-२४७००१; १९९६; पृष्ठ viii + ३८२; मूल्य रु० ४००/-

अध्यात्मभावानुप्राणित तथा दार्शनिक दृष्टि परिवेष्टित 'देह से विदेह की ओर' शीर्षक का ध्वन्यर्थ जिस यात्रा की ओर संकेत कर रहा है, वह है, साकार से निराकार की यात्रा, रूप से अरूप की यात्रा, भाषा से भाव की यात्रा, और कविता से अनुभूति की यात्रा। दूसरे शब्दों में इसे मन की अन्तर्यात्रा भी कहा जा सकता है। आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत्, सृष्टिव्युत्पत्ति, पुनर्जन्म, कर्मफल, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, माया, मोक्ष, ज्ञान तथा दर्शन जैसे विषय से सम्बन्धित पुस्तक प्रायः नीरस,

दुरुह एवं जटिल ही समझी जाती है, जिसका पाठक पथिक पथ-रहित विशाल भीषण कान्तार में भटकता नजर आता है, लेकिन 'देह से विदेह की ओर' का पाठक अपने आपको एक ऐसे रमणीय उपवन में घूमता हुआ पाता है, जिसकी मनोरम छटा देखते ही बार-बार देखने की ललक पैदा होती है। इसका विवेच्य विषय अनिर्वचनीय विवेचन पद्धति द्वारा वर्णित कथाओं व घटनाओं के फलस्वरूप और भी अधिक सरल, सरस तथा बोधगम्य हो उठा है।

निःसंदेह शब्द प्रयोग तथा अर्थभावन (अर्थतत्त्व) के प्रति सतत सजग डा० 'सुमन' ने इस रचना में वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत, गीता, रामायण आदि अध्यात्म व दर्शन संबंधी ग्रन्थों के उस विषय व तद्गत पारिभाषिक शब्दों को अंगीकार किया है, जिस पर पूर्ववर्ती कितने ही मनीषी, योगी व विद्वज्जन अपनी लेखनी उठा चुके हैं, लेकिन अध्यात्म प्रेमी व भारतीय संस्कृति के अनन्य अनुरागी डा० 'सुमन' ने अपनी अनूठी निर्वचन प्रक्रिया व लाजवाब विवेचन पद्धति द्वारा इसे एक नया ही मोड़ दे दिया है, जिसमें "गालिब के तर्जेबयाँ कुछ और ही हैं" की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

पुस्तक के आद्यन्त अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि डा० 'सुमन' के मस्तिष्क की विचारधारा के साथ उनके हृदय की भाव धारा भी कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ी है। इसमें भव्य विचारों का गद्य निर्झर ही नहीं, अपितु दिव्य भावों की स्रोतस्विनी भी प्रवाहित है। डा० 'सुमन' की मान्यता है कि केवल वैदिक संस्कृति को भारतीय संस्कृति नहीं कहा जा सकता और न केवल हिन्दू-संस्कृति भारतीय संस्कृति है अपितु वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति के समन्वित स्वरूप ही को भारतीय संस्कृति का स्वरूप कहा जा सकता है। मनीषी लेखक ने मनुष्य के कृष्णपक्षीय संस्कारों को शुक्लपक्षीय संस्कारों में बदलने के लिए उसकी मनोभूमि को आध्यात्मिकता के गंगाजल से सींचने का सफल प्रयास किया है।

—आचार्य शिव चन्द्र शर्मा

हिन्दी भाषा – ले० डा० कैलाश चन्द्र भाटिया; प्रकाशक–साहित्य भवन प्रा० लि०, जीरो रोड, इलाहाबाद; १९९५; पृ० १३९+१५३; मूल्य रु० १००/-

पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है–१. हिन्दी भाषा का विकास और २. हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का स्वरूप। पहले खण्ड में हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास तथा दूसरे खण्ड में देवनागरी लिपि के साथ-साथ हिन्दी भाषा का वर्णनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहासो में हिन्दी और उसकी बोलियों की उत्पत्ति एवं विकास दसवीं शताब्दी से मानते हुए भी विद्वानों ने उसका साहित्य बाद में ही स्वीकार किया है। खड़ी बोली साहित्यिक हिन्दी के भूतकाल में झाँकने पर तो वे भलीभांति अपनी दृष्टि दक्खिनी हिन्दी तक ही ले जा सके हैं। प्रथम खण्ड में हिन्दी की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ते हुए उसका शृंखलाबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे खण्ड में हिन्दी प्रदेश की मानकता, हिन्दी और नागरी लिपि तथा मानक हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। लेखक के अनुसार व्यवहार में हिन्दी उस बड़े भू-भाग की भाषा मानी जाती है जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिणी-पूर्वी भाग में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ एवं वैज्ञानिकता का निरूपण करने के साथ-साथ हिन्दी के मानकीकरण में देवनागरी की भूमिका का विवेचन इस पुस्तक की एक विशेषता है। अन्त में पांच परिशिष्टों में विभिन्न विद्वानों के भाषण तथा राजभाषा अधिनियम आदि देकर पुस्तक को प्रामाणिक बनाया गया है।

–डा० कमल सिंह

भजन-मणिमाला – सं० श्री लूण करण नाहर; प्र० सर्वश्री लूण करण-संजय-विजय-विनय नाहर, 'नाहर निकेतन', ५१४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-२२६००४; १९९५; पृ० १०+१०५+१४

इसमें १०९ भजनों का संकलन है जिसमें कुछ भजन राजस्थानी में हैं और अधिकांश भजन लोकप्रिय फिल्मी तर्जों पर हिन्दी में हैं। संकलनकर्ता श्री लूण करण नाहर के स्वरचित भी १० भजन हैं तथा ३ भजन लखनऊ के श्री प्रकाश चन्द्र 'दास' के हैं। अन्य भजन प्रायः स्थानकवासी साधुओं यथा चौथमलजी, चन्द्रभाण, अशोक मुनि, माधवमुनि, रतनचन्द्र, रुघनाथ, नवलमल, गजमुनि, पंकज, योगीन्द्र, ज्ञानमुनि, गणिहस्ती, अमर, मुनि राम, केवल मुनि, मगन, चेनसागर, पारस, चन्द्रभूषण, विनय चन्द, जीत, भूदेव, मुनि पुष्प, वीर मण्डल, मुनि नन्द लाल, तिलक, नाथुराम, केवल आनन्द, नाथमुनि, चन्दन, कुमुद मुनि, तिलोक ऋषि, गजेन्द्र और आसकरण, द्वारा रचित हैं। कबीर और जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' के पद तथा कुछ अन्य लोकप्रिय भजन भी संकलित हैं। सभी में भक्ति भावना अथवा नैतिक मूल्यों का प्रकटन है। साथ में, १४ पृष्ठों में सामयिक सूत्र भी दिये गये हैं।

जैसा कि संकलनकर्ता ने स्वयं कहा है, यह भक्ति भाव से पूर्ण भजनों की एक मणिमाला है। इसके संकलन, सम्पादन और प्रकाशन में श्री नाहर का सहयोग उनके पुत्रों और पुत्रवधुओं ने भी किया है, जो अभिनन्दनीय है। भक्ति संगीत से रुचि रखने वालों के लिये पुस्तक उपयोगी और संग्रहणीय है।

भावक एवं चिन्तक आचार्य परशुराम चतुर्वेदी – सं० डा० मंजुलता तिवारी; प्र० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी स्मारक एवं समारोह समिति, बशीर बिल्डिंग, पान दरीबा, लखनऊ; १९९५; पृ० ९+१२३+चित्रावली; मूल्य रु० ७५/-

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (१८९४–१९७९) हिन्दी सन्त साहित्य के विशिष्ट अध्येता थे। पेशे से वकील थे, परन्तु शौक से

साहित्य रसिक थे। विनोद से वह कहा करते थे कि वकालत उनकी परिणीता है और साहित्य उनकी प्रेयसी। परिणीता के प्रति दायित्व का निर्वाह और चार पुत्रों व चार पुत्रियों तथा उनकी २१ सन्तानों का सम्यक् रूपेण लालन-पालन उनका अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा एवं अध्यवसाय का प्रतिफल था। प्रेयसी के प्रति लुब्धता और उसके सम्मोहन का आकर्षण उनके अध्ययन-लेखन के प्रति समर्पण में लक्षित है। डा० मंजुलता तिवारी ने पृ० ५४–६० पर परशुराम जी के समस्त प्रकाशित साहित्य का ब्यौरा दिया है जो शोधार्थियों के लिए विशेष महत्व का है। २० लेख उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर विभिन्न मनीषियों/मित्रों/सन्तानों द्वारा समालोचनात्मक, समेकात्मक अथवा संस्मरणात्मक हैं। ३ लेख उनके स्वयं के हैं और उनके साहित्य/कृतियों पर ६ समीक्षायें विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा हैं। उनके वंश परिवार से सम्बन्धित सामग्री के साथ उनकी चित्रावली पाठक को उनका सहज दर्शन करा देती है।

राष्ट्र भाषा हिन्दी को समर्पित एक सरल तदपि गम्भीर व्यक्तित्व का बौद्धिक दृष्टि से प्रामाणिकीय अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए सम्पादक मण्डल और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी काव्य और कबीर – ले० डा० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन; प्र० कुसुम प्रकाशन, नवेन्द्र सदन, आदर्श कालोनी, मुजफ्फरनगर-२५१००१; १९९६; पृ० xviii + २८८; मूल्य रु० २००/-

प्रस्तुत ग्रन्थ लेखिका का पी-एच०डी० के लिए आगरा विश्व-विद्यालय से स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। प्रायः २५ वर्ष यह प्रकाशन की प्रतीक्षा में रहा और अन्ततः १९९६ में प्रकाश में आया। प्राक्कथन में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि शोधन सामग्री उन्हें मूल ग्रन्थों के रूप में ही प्राप्त हुई है, अतः जो भी विश्लेषण तथा विवेचन उन्होंने किया है वह उनका अपना दृष्टिकोण है। अध्ययन ७ अध्यायो में है

जिनमें क्रमशः रहस्यवाद, जैन रहस्यवाद, अपभ्रंश के रहस्यवादी कवि और उनके काव्य, अपभ्रंश के जैन कवियों की आध्यात्मिक विचारधारा और कबीर, अपभ्रंश के जैन कवियों का साधना-मार्ग और कबीर, अपभ्रंश के जैन कबियों की रहस्यानुभूति और कबीर, तथा अपभ्रंश के जैन कवियों की अभिव्यंजना प्रणाली और कबीर, का विवेचन है। परिशिष्ट में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी और अंग्रेजी के ग्रन्थों की सूची दी गई है जिनका उपयोग इस अध्ययन में किया गया है।

अपभ्रंश में जैन साहित्य का प्रणयन जोइन्दु से रइधु तक प्रायः ८वीं शती से १५वीं शती ईस्वी के बीच हुआ। जो साहित्यकार थे, यद्यपि उनका उल्लेख 'कवि' के विशेषण के साथ किया गया है परन्तु सामान्यतः उन्हें मुनि या गृहत्यागी साधु सूचित किया गया है। १५वीं शती ईस्वी से पूर्व के जैन साहित्य के सम्बन्ध में एक रूढ़ धारणा बन गई है कि उसका प्रणयन मुनि लोगों ने ही किया था। इस धारणा की समीक्षा आवश्यक है।

रहस्यवाद का मूलपक्ष अनुभूतिगम्यता है, शास्त्र-बोध अथवा किसी व्यक्ति विशेष के वचन नहीं। यही विशिष्ट सादृश्य कबीर और जोइन्दु से रइधु तक के अपभ्रंश में रचित रहस्यवादी दोहों में है। अन्य विशेषताओं और सादृश्यों का विशद विवेचन लेखिका ने समीचीन रूप से किया है।

षट्खंडागम् पर कुन्दकुन्द द्वारा टीका लिखे जाने का उल्लेख (पृ० ६) किया गया है। यदि यह साधार है तो कुन्दकुन्द का समय २री शती ईस्वी से परवर्ती होना चाहिए। जैन रहस्यवाद या अध्यात्मवाद का प्रारम्भ कुन्दकुन्द की रचनाओं में देखा गया है, यह भी ध्यातव्य है।

रहस्यवाद या अध्यात्मवाद एक गूढ़ विषय है। उसका तुलनात्मक दृष्टि से गम्भीर अध्ययन एक दुष्कर कार्य है। लेखिका ने विषयवस्तु को उसी गम्भीरता से प्रस्तुत किया है। मुद्रण की कुछ त्रुटियां हैं। इन्डेक्स उपादेय होता। ऐतिहासिक काल-क्रम को गौण

नहीं रखा जाना चाहिए। तथापि समग्र रूप से यह अध्ययन जिज्ञासा-प्रेरक और उपयोगी है। इसके लिए लेखिका और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

पञ्चाल – (खण्ड ८, १९९५)–सं० डा० ए० एल० श्रीवास्तव; प्र० पञ्चाल शोध संस्थान, ५२/१६, शक्कर पट्टी, कानपुर-२०८००१; पृ० १७२, चित्र ५३; मूल्य रु० ५०/-

भाग एक में ३० शोध निबन्धों में से ११ निबन्ध पञ्चाल के इतिहास से सम्बन्धित हैं। एक लेख तीर्थंकर विमलनाथ पर है। कलावशेषों से सम्बन्धित ४१ चित्र भी हैं।

भाग दो में पञ्चाल शोध संस्थान की १९९५ की वार्षिक रिपोर्ट, प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी के ७८वें जन्म दिन समारोह का वृत्त और श्री हजारीमल बांठिया के सार्वजनिक सम्मान समारोह का विवरण, तथा समीक्षाएं हैं।

शोध निबन्धों में प्राचीन भारतीय इतिहास और कलावशेषों पर प्रकाश डाला गया है। जिज्ञासुओं के लिए यह उपयोगी है। उपयोगी सामग्री प्रकाश में लाने के लिए सम्पादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

INDIA AS KNOWN TO HARIBHADRA SURI : by Dr. Ram Sajiwan Shukla; pub. Kusumanjali Prakashan, Meerut/41-A, Sardar Club Scheme, Jodhpur; 1989; pp. xxvii + 160; Rs. 150/-

This was presented as a thesis for Ph.D. in the Department of Ancient Indian History & Archaeology, Lucknow University, and the Degree was awarded in 1988. The study is divided into 6 chapters, respectively dealing with the life, learning, works and date of Haribhadra; political condition of Western India in the time of Haribhadra; polity, administration and judicial system; economic life; social life; and religious life. It also carries bibliography, index and a foreword by Prof. S. R. Goyal of the Jodhpur University. Language is lucid and style fluid. The text is given in the Roman in the annotations, and due care has been taken in referencing.

The base is mainly the fictional **Samaraicca-kaha** and the satire **Dhurtakhyana**, attributed to Haribhadra Suri, c. 8th century A. D. Only 4 other works of Haribhadra are mentioned in the bibliography, namely, **Anekantajayapataka, Lalitavistara, Lokatattvanirnaya** and **Sastravartasamuccaya**. Among the works on Haribhadra, only Sukhlal Sanghvi's **Samadarsi Acarya Haribhadra** and Nemi Chandra Shastri's **Haribhadra ke Prakrit Katha Sahitya ka Alochanatmaka Parisilana**, are mentioned L.C. attributed to Kalyanavijaya, has not been defined.

The author has taken pains to collate bits of information under the respective heads. But it seems to lack an effort to sift the chaff from the grain, and to weed out the absurd If Yakini was a Buddhist nun, her preceptor could not have been a Jain Yati Jinadatta. The later stories about Haribhadra ought to have been dismissed as fiction. The bare fact is that no authentic personal details are known about Haribhadra.

The works of Haribhadra also need to be identified. It is possible that there may have been 2 or 3 persons who might have authored the different works which are attributed to one Haribhadra now. There should also be an effort to find out if the story literature and satires were written by a recluse (yati) or by a householder, Haribhadra. To me, it appears to be a highly erroneous assumption that all Jain literature, whether of the Digambaras or the Svetambaras, was written by the monks only (not even by the nuns) and all the lay adherents (Sravakas and Sravikas) were just bereft of intelligence, education and scholarship.

As regards the data about socio-political conditions etc., at least two-third is extraneous to Haribhadra and it makes a curious mix-up. It would have been more relevant if the data was confined to Haribhadra's works alone, and the corroborative other evidence should have been noted in the footnotes.

The author may like to touch up on the above lines in his second edition of the work. All the same, it is a useful addition to the studies on Jainology. Our sincere thanks to Dr. Shukla for having shown so much interest in Jain literature.

—डा० शशि कान्त

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

सम्मेद शिखर पर निर्माण कार्य

"छपते-छपते समाचार मिला है कि श्री सम्मेत शिखर जी तीर्थ के ऊपर दिगम्बर जैन समाज द्वारा मन्दिर और आवास स्थल का निर्माण बड़ी गति शीघ्रता से चल रहा है। आश्चर्य इस बात का है रांची हाईकोर्ट द्वारा निर्माण कार्य पर स्थगन आदेश दिये जाने के बाद श्री दिगम्बर जैन समाज द्वारा निर्भय हो कर निर्माण किया जा रहा है। निर्माण में स्थानीय प्रशासन उनका पूर्ण सहयोगी बना हुआ है, जबकि श्वेताम्बर समाज की सक्रियता को विराम लगा हुआ है। यह भी पता चला है निर्माण के दौरान अधिक जमीन कब्जे में ले ली गई होने का सन्देह है। न्यायालय का आदेश दिगम्बर समाज के लिए मात्र कागज रह गया है। बिहार सरकार का पूरा प्रशासन उनका सहयोगी बना हुआ है। देखना है कि श्री आनन्द जी कल्याण जी की पेढ़ी का अगला कदम क्या होता है।"

—**श्वेताम्बर जैन**, १६ जून, ९६

हम नहीं समझते कि सम्मेद शिखर जी पर दि० जैन समाज द्वारा कोई भी निर्माण कार्य न्यायायाल के स्पष्ट आदेश का उल्लंघन करके कराया जा रहा है तथा उपरोक्त रिपोर्ट अतिरंजित ही जान पड़ती है। किन्तु यदि यह सत्य है तो अति धार्मिक उत्साह में अवैध पूर्ण तरीके से धर्म क्षेत्र पर कराए जा रहे किसी भी निर्माण कार्य की अनुमोदना नही की जा सकती। वह अनैतिक है और अनैतिकता का धर्म के क्षेत्र में कोई स्थान नही होना चाहिए।

मांगी-तुंगी पर पंचकल्याणक व आचार्य श्री को अवमानना

"दक्षिण में लघु सम्मेद शिखर के नाम से विख्यात श्री मांगी तुंगी जी सिद्ध क्षेत्र पर १९ से २३ मई तक मुनि श्री रयण सागर जी, आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी (ससंघ) एवं आर्यिका श्री

श्रेयांसमती जी के सानिध्य में पंच कल्याणक महोत्सव का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ। समारोह में महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री जी सहित अनेक मंत्रियों ने भाग लिया। इन पांच दिनों में करीब एक लाख से अधिक श्रद्धालु यात्रियों ने समारोह में सम्मिलित होकर पुण्य लाभ लिया। समारोह के पांचो दिन सभी के लिए भोजन की निःशुल्क व्यवस्था दानवीर श्री पूनमचन्द गजराज जी गंगवाल की ओर से की गई।"

—जैन गजट, २० जून, ९६

"आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी के ससंघ (४ मुनि एवं ४ आर्यिका माताओं सहित) श्री मांगीतुंगी जी सिद्ध क्षेत्र पर पधारने पर सिद्ध क्षेत्र कमेटी की ओर से भव्य स्वागत किया गया।"

—वीतराग वाणी, मई-जून, ९६

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष साहू अशोक कुमार जैन ने नई दिल्ली से एक वक्तव्य में कहा कि "मुझे यह जान कर पीड़ा हुई है कि सिद्ध क्षेत्र मांगी तुंगी पर विराजमान पूज्य १०८ श्री आचार्य वर्द्धमान सागर जी के साथ समाज के कुछ व्यक्तियों द्वारा विनयपूर्वक बर्ताव नहीं किया गया·····हमारे तीर्थों पर वन्दना और विहार करने का सभी सन्तों को अधिकार है तथा वहाँ उनकी यथा योग्य सेवा और अभ्यर्थना करना तीर्थ क्षेत्र कमेटी के कार्यकर्ताओं का तथा हम सबका कर्त्तव्य है।·····मैं उनके प्रति किए गये ऐसे अविनयपूर्वक व्यवहार की निन्दा करता हूँ तथा भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष के नाते पूज्य आचार्य श्री से व उनके संघ से क्षमा याचना करता हूँ।"

आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी सौम्य, निर्मल चरित्र के धनी एवं उत्कृष्ट साधक हैं। वे युग प्रधान चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की परम्परा के पंचम पट्टाचार्य, सर्व मान्य एवं विख्यात दिगम्बर जैनाचार्य हैं। उनके साथ अभद्र व्यवहार क्षेत्र पर विद्यमान कुछ साधु-साध्वियों के अंध श्रद्धालुओं द्वारा उनकी शह पर उनके **अहं के टकराव** के कारण ही किया गया

प्रतीत होता है जिसके कारण ही कदाचित उन्हें क्षेत्र से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के पूर्व ही विहार कर देना पड़ा। पू० वर्द्धमान सागर जी का अपमान वस्तुतः आ० शान्ति सागर जी की पूरी परम्परा की अवहेलना है।

नवोदित तीर्थ क्षेत्र

"आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माता जी ने उज्जैन के जयसिंहपुरा दिगम्बर जैन मन्दिर के प्रांगण में घोषणा की कि 'उज्जैन एक सिद्ध क्षेत्र है जहाँ से परम पूज्य अभयघोष मुनिराज अन्तकृत केवली होकर मोक्ष गए। .....इस भूमि से प्रथम तीर्थंकर आदि नाथ और अन्तिम तीर्थंकर महावीर जुड़े हुए हैं। भगवान महावीर की तपस्या स्थली उज्जैन रही है और यहीं से उन्हें महावीर और अतिवीर नाम मिले।' श्रद्धेय माता जी ने संस्कृति के अनुपम केन्द्र हस्तिनापुर एवं अयोध्या का **पुर्नानिर्माण** कर एक बार पुनः अखिल भारतीय **तीर्थों की श्रंखला को पुनर्स्थापित किया है**, उसी प्रगति श्रंखला में उज्जैन को भी पुनर्स्थापित किया है।

आर्यिका जी के मार्गदर्शन में बनी विकास एवं निर्माण योजना के प्रथम चरण में अभयघोष मुनिराज (जिनकी यह निर्वाण भूमि है), विष्णु कुमार मुनि, अकंपनाचार्य तथा चा० च० आचार्य शान्ति सागर जी महाराज (जिनका कि उज्जैनी से सम्बन्ध रहा है) के चरण चिन्ह तथा भगवान महावीर स्वामी की एक साढ़े नौ फुट ऊँची मूर्ति स्थापित की जायेगी। उज्जैन में जैन संस्कृति से सम्बन्धित घटनाओं का दिग्दर्शन कराने वाली १२ झांकियों का तथा एक आचार्य शान्ति सागर निलय (त्यागी भवन) का भी निर्माण किया जाएगा। इन समस्त कार्यों के लिए दान दातारों ने घोषणा की।"

—**अहिंसा वाणी**, मार्च ९६, से साभार

विदूषी आर्यिका शिरोमणी ज्ञानमती जी ने अवश्य ही प्राचीन जैन वाङ्मय के अपने गहन अध्ययन के सुफल में उपर्युल्लिखित खोजें की होंगी किन्तु यदि वे हम जैसे अल्पज्ञों के ज्ञान वर्द्धन के लिए इन

खोजों का स्रोत उद्घाटित कर सकें तो उनकी असीम अनुकम्पा होगी।

उपरोक्त समाचार के पढ़ने से ऐसा भ्रम होता है कि आर्यिका श्री ज्ञानमती जी ने हस्तिनापुर तथा अयोध्या जी तीर्थ क्षेत्र का पुनर्निर्माण कराया है तथा उसके पूर्व ये दोनों तीर्थ क्षेत्र अविकसित एवं उपेक्षित पड़े हुए थे, जबकि वास्तविकता यह है कि हस्तिनापुर गत दो सौ वर्षों से जैनों का उत्तरी भारत में प्रमुख तीर्थ क्षेत्र रहा है तथा माता जी द्वारा निर्मित कराये गये तथाकथित जम्बूद्वीप स्थल के अलावा वहाँ अनेक भव्य एवं विशाल दिगम्बर-श्वेताम्बर जिनालय एवं धर्मशालाएं हैं। इसी प्रकार अयोध्या जी तीर्थ क्षेत्र अवध प्रान्त के दिगम्बर जैनों का प्रमुख तीर्थ क्षेत्र गत डेढ़ सौ वर्षों से चला आ रहा है तथा इसका उल्लेखनीय विकास तो श्रमणराज आचार्य देश भूषण महाराज की प्रेरणा से लगभग तीस वर्ष पूर्व ही साहू शान्ति प्रसाद जी तथा ला० पारसदास जी आदि सुश्रावकों द्वारा रायगंज उद्यान क्रय करके उसमें विशाल एवं भव्य आदि नाथ जिनालय के निर्माण से हुआ था। पूरे अयोध्या-फैजाबाद में 'बड़ी मूर्ति मन्दिर' के नाम से यह सुविख्यात है। माता जी के मार्गदर्शन में रायगंज परिसर में ही दो और नए मन्दिरों का निर्माण हो गया है तथा एक दो अन्य का जीर्णोद्धार हुआ है। किन्तु केवल इसे क्षेत्र की पुर्नस्थापना या पुनर्निर्माण कहना अतिरंजित एवं भ्रामक कथन है। वीतरागी सन्तों को अपने भक्तों के इस प्रकार के भ्रामक प्रचार को कड़ाई से रोकना चाहिए।

विगत कुछ वर्षों में कई नवीन दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्रों का उदय हुआ है तथा विकास किया जा रहा है, यथा—

(१) **कोथली** (कर्नाटक) – आ० देश भूषण महाराज की जन्म स्थली।

(२) **गोम्मट गिरि** – इंदौर नगर से ९ कि०मी० दूरी पर एक पहाड़ी पर पद्मश्री बाबू लाल जी पटौदी के अकथ प्रयास से करोड़ों की लागत से विकसित।

(३) **पाकबीरा** – (जिला पुरलिया, पश्चिम बंगाल)- उपा० श्री ज्ञान सागर की सत्प्रेरणा से सराक क्षेत्र में जहाँ तीन प्राचीन तीर्थंकर प्रतिमाएं भूगर्भ से प्राप्त हुई थीं।

(४) **ज्ञानोदय तीर्थ** – अजमेर के समीप नारेली ग्राम में। यह आचार्य श्री विद्यासागर की दीक्षा स्थली है।

(५) **भाग्योदय तीर्थ** – सागर (म०प्र०) के समीप। यह आचार्य श्री विद्यासागर की प्रेरणा से २१ करोड़ की लागत से एक सौ बिस्तर वाले अस्पताल के निर्माण के साथ एक **सेवा तीर्थ** के रूप में विकसित किया जा रहा है।

(६) **धार (म०प्र०)** – यहाँ समीप की एक पहाड़ी पर मान-तुंग आचार्य की चरण पादुका स्थापित कर एक नए तीर्थ का विकास किया जा रहा है।

(७) **पुष्पोदय तीर्थ** – इसे भी सागर के समीप एक पहाड़ी पर आ० श्री पुष्पदन्त सागर की कल्पना को साकार करने के लिए एक नए तीर्थ क्षेत्र के रूप में विकसित करने की योजना बनाई गई है।

और (८) अब आर्यिका श्री ज्ञानमती जी का कल्पना प्रसून **ऊं गिरी तीर्थ** एक नया तीर्थ क्षेत्र शीघ्र बनेगा जो इंदौर नगर से ९ कि०मी० दूर पर स्थित गोम्मट गिरि के पास की छोटी पहाड़ी पर होगा।

हमारे पूज्य मुनिराजों एवं आर्यिका माताओं की सत्प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में तीर्थ क्षेत्रों पर पुनर्निर्माण एवं नवनिर्माण प्रचुर मात्रा में होने के बावजूद आज हमारे अधिकांश तीर्थ क्षेत्रों की दुर्दशा का यह हाल है कि मन्दिरों में दैनिक पूजा के लिए वैतनिक पुजारी रखने पड़ते हैं जो दिगम्बर जैन आम्नाय की आर्ष परम्परा सम्मत नहीं है तथा कहीं-कहीं तो जैन धर्मावलम्बी वैतनिक पुजारी भी न मिल पाने के कारण ब्राह्मण पुजारी द्वारा श्रद्धाविहीन पूजा की औपचारिकता का निर्वहन कराया जा रहा है। प्रबन्धक एवं अन्य

कर्मचारियों के वेतन अल्प होने के कारण सुयोग्य प्रबन्धक व कर्मचारी या तो मिलते ही नहीं या टिकते नहीं। फलस्वरूप इन क्षेत्रों पर कार्य-अक्षमता, हिसाब में गोलमाल और भ्रष्टाचार कोई चौकाने वाली बात नहीं रह गई हैं। क्या हमारे तीर्थोद्धारक मुनिराज एवं आर्यिकायें इस ओर भी ध्यान देंगे ?

एक बात और। जैन जगत में अभी तक तीर्थ क्षेत्रों के रूप में केवल निम्नलिखित को ही मान्यता एवं पूजनीयता प्राप्त रही है—

(१) **सिद्ध क्षेत्र** या केवली भगवन्तों की निर्वाण भूमियां,

(२) **कल्याणक क्षेत्र** – तीर्थंकरों के जन्म, तप, ज्ञान तथा प्रथम देशना स्थल की पवित्र भूमियां,

(३) **अतिशय क्षेत्र** – किसी प्राचीन तीर्थंकर प्रतिमा के निमित्त से देव कृत अतिशय से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए क्षेत्र, तथा

(४) प्राचीन संस्कृति एवं मूर्ति कला के केन्द्र।

अब हमारे मुनिराजों व आर्यिका मताओं के कल्पनालोक से अवतरित एक नई श्रेणी के तीर्थ क्षेत्र उनकी अहम् तुष्टि के रूप में उदय में आ रहे हैं।

साध्वाचार के बदलते आयाम–यत्र तत्र सर्वत्र

Godman held on rape Charge

A report from Paris (France) in the **Times of India**, June 15 : A self proclaimed messiah and 17 members of his sect were taken in custody as police investigated claims by a former follower that the Guru sexually abused her reapeatedly when she was a teen-ager .... It was the second sweep by the police this year on the Knights of the Golden Lotus, a sect established in the Southern French town of Castellane in 1969 by Gilbert Bourdin.........

The complainant a 29 year old woman contended that Bourdin, now 71, abused her sexually on numerous occasions between 1980 and 1985. The woman's mother was a devoted follower of Bourdin and had brought the daughter to live in the temple complex in Castellane ....The young woman described her experience as a 14-year old in the daily **La Parision**--

"He manipulated me at a time when I was completely under his influence", she said. "I was disgusted with myself. I was sick and often threw up. But at the same time I was so influenced by him that I told myself that it was a great honour."

... ..Although the rape complaint marks the first time Bourdin has faced a formal investigation of sexual abuse, police said they had collected testimony from other women that the Guru had sexual relation with other followers.

बलात्कार के अपराधी स्वामी को कारावास

राजकोट (गुजरात) से प्राप्त समाचार – **दैनिक जागरण,** १९ मार्च – तीर्थ नगरी **द्वारिका के सनातन आश्रम के प्रमुख** स्वामी **केशवानन्द** को एक नाबालिग लड़की के साथ बलात्कार करने के जुर्म में दस वर्ष के कठोर कारावास की तथा ३५००० /- के जुर्माने की सजा जामनगर के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एस० एन० बोरा ने सुनाई। स्वामी केशवानन्द को २० जून १९९४ को गिरफ्तार किया गया था। **उस पर नौ लड़कियों के साथ बलात्कार करने का** आरोप था। इनमें से ज्यादातर लड़कियाँ आश्रम द्वारा संचालित स्कूल के छात्रावास में रहती थीं। उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द की जमानत नामंजूर कर दी थी।

Muni's 'dangerous liaison' upsets community

Mr. Prem Sukh Surana reports from Ajmer (Rajasthan) in the **Hindustan Times, May 26** : (Shvetamber Sthanakvasi) Jainacharya Abhai Kumar Muni's soft corner for one of his disciples, a former Sadhvi, has upset the wealthy Oswal Jain community here, and a sizeable number of Jains boycotted the function held to celebrate the golden jubilee of the Acharya's Muni Diksha And they would continue to do so till he severs whatever "links" he has with Kamla, the former Sadhvi.

According to Mr. Premsukh Surana, the convenor of the Golden Jubilee Function Committee, "on his return from Jaipur after finalising the programme of the Speaker and Education and PWD ministers for the function, he was told that Kamla was in town and was staying in a house opposite the Venue ..... He

along with some others went to Muniji and raised the issue. Muniji summoned Kamla and told her to leave... But, the next day some youths came to his house and threatened him with grave consequences if he continued to insist on Kamla's departure."

पदों की घुड़दौड़

कथालोक (जून ९६) में श्री जे० के० संघवी द्वारा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त की गई है। सदियों से गुणवानों का गौरव होता ही रहा है तथा विशिष्ट गुणों के कारण साधु सन्तों को भी विशिष्ट उपाधियों से अलंकृत किया जाता रहा है। पंच परमेष्ठि में प्रथम स्थान है साधुओं का जो बाद में आध्यात्मिक विकास करते हुए क्रमशः उपाध्याय और आचार्य की पदवी गुरू द्वारा प्राप्त करते हैं। किन्तु वर्तमान में यह देखा जा रहा है कि ९०% पदवियां शिक्षा या गुणों के आधार पर नहीं बल्कि जोड़-तोड़ कर जबरन या जेबी संस्थाओं से दिला कर हासिल की जा रही हैं।

पिछले दिनों मुम्बई में एक आचार्य श्री को चुपके से एक विशेष विशेषण प्रदान किया गया। चलते कार्यक्रम में एक नेता द्वारा उन्हें अभिनन्दन पत्र दिलाया गया। न तो वो नेता उन साधु के परिचित थे और न ही कार्यक्रम में कोई घोषणा की गई किन्तु सभी पत्र-पत्रिकाओं में जोर-शोर से जाहिरात कर दी गई कि अमुक नेता द्वारा आचार्य श्री को अमुक उपाधि प्रदान की गई।

थोड़े दिन पहले **पालीताना** में (श्वेताम्बर सम्प्रदाय के) **एक ही संघ के दो मुनियों को उपाध्याय पद दिया गया।** उनमें से एक मुनि ने तो अपनी जेबी संस्था के नाम से पद ग्रहण करने का विज्ञापन पत्रों में छपवा भी दिया था। जब आचार्य श्री से इस विषय में बात हुई तो वे कहने लगे कि "क्या करूँ! मेरी तो कोई मानता ही नहीं है। जब वे मुनि अपने आप ही पदवी ले रहे हैं तो अच्छा है, मैं ही दे दूं।" तीन साधुओं के संघ में दो आचार्य व एक मुनि भी कई बार देखे गए हैं।

[दिगम्बर सम्प्रदाय में भी ऐसा भी संघ देखा गया है जिसमें केवल दो आचार्य (गुरू-शिष्य) थे तथा साथ में एक सुदर्शना (वैतनिक) संघ संचालिका थी। एक मुनि श्री ने उत्तर प्रदेश के एक पश्चिमी जिले के एक कस्बे में चातुर्मास करते हुए वहां की छोटी सी समाज से अपने को आचार्य की पदवी से अलंकृत करवा लिया, जबकि उनके गुरू आचार्य भी जीवित थे। एक आचार्य परम्परा में तीन पट्टाचार्य एक ही समय में विचरण कर रहे हैं।]

अपरिपक्व दीक्षाएं

श्री धर्मवीर जैन ने **धर्म मंगल** दि० १ जून ९६, में अपरिपक्व दीक्षाओं पर चिन्ता व्यक्त की है। हाल ही में एक (दिगम्बर) आचार्य ने एक सज्जन को मुनि दीक्षा दी जो एक दिन सरधना से एकाएक लापता हो गए। कुछ लोगों को उनके अपहृत किये जाने की शंका हुई और अखबार में भी सूचना निकाली गई। आचार्य श्री स्वयं ससंघ पुलिस स्टेशन अपहरण की रिपोर्ट लिखाने गए। वहाँ अधिकारियों ने उनके साथ अभद्रता पूर्ण व्यवहार किया जिससे पंच-परमेष्ठी में सम्मिलित आचार्य एवं साधुओं का तिरस्कार हुआ। बाद में यह भी मालूम हुआ कि वे सज्जन अपनी पत्नी से झगड़ कर आए थे तथा आवेश में ही उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली थी। (और अब वे पुनः ग्रहस्थाश्रम में चले गये हैं।)..... एक अन्य आचार्य ने एक व्यक्ति को छुल्लक दीक्षा दी तथा कुछ समय बाद उन्हें ऐलक दीक्षा भी दे दी। आचार्य श्री ने जब उनका एक दुराचार देखा तो उनसे पिच्छी कमण्डल छीन लिया तथा उन्हें संघ से निकाल दिया।

कायाकल्प

मेरठ में पिछले दिनों (एकल विहारी) मुक्ति सम्राट नाम के दि० जैन मुनि पधारे थे। विहार कर जाने के बाद पता चला था कि वे नशीले ड्रग इन्जेक्शन स्वयं अपने लगाते थे जिन्हें वे किसी बालक से मंगा लेते थे। दिल्ली गए, वहाँ विवेक बिहार में समाज ने कपड़े पहना कर भगा दिया। उसके बाद मेरठ में सूट-बूट में लड़कों ने देखा। गले में सोने की चैन, हाथ में अंगूठी आदि पहने थे।

स्व-प्रचार का एक उदाहरण

कोटा में २८ जुलाई को मुनिद्वय श्री तरुण सागर एवं श्री प्रज्ञा सागर के चातुर्मास का प्रारम्भ मंगल-कलश की 'बोली' से हुआ। यह मंगल कलश चांदी का नक्काशीदार पात्र था जो चातुर्मास के दौरान मुनिवरों के कक्ष में स्थापित रहेगा। मुनि श्री तरुण सागर ने बोली में सर्वसाधारण जन को भी सम्मिलित कर उन्हें धर्म के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट करने का अवसर देने के लिये न्यूनतम बोली मात्र ५१/- रुपये निर्धारित की। बोली इक्यावन रुपये से शुरू हुयी और बहुत तेजी से ऊपर उठती हुयी ८५,००० रुपये पर पहुंच कर कुछ पलों के लिये ठहर सी गयी। मुनि श्री तरुण सागर ने बोली को त्वरित करने के लिये कहा कि अब तो 'थोड़ी कसर' (मुनिवर का आशय सम्भवतः एक लाख के लक्ष्य से था) रह गयी है। राशि शनैः-शनैः बढ़ती गयी। मुनिराज ने बीच में पुनः उद्‌बोधा कि बोली तो 'वहीं तक' जानी चाहिए। बोली के एक लाख एक हजार एक सौ ग्यारह पर पहुँचने पर मुनिवर ने निर्देश दिया कि अब तो हो गया, अब बोली खत्म करो। सबसे ऊँची बोली बोलने वाले को मुनिवर ने स्वयं आवाज देकर तस्वीर खिचवाने के लिये बुलाया।

पूरे परिवार द्वारा दीक्षा ग्रहण

रत्नराज (जून ९६) में एक रिपोर्ट – "इन्दौर में सम्पूर्ण परिवार द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का अपूर्व अवसर २५ अप्रैल को प्रस्तुत हुआ। प्रातः ८ बजे बड़ा सराफा से रथयात्रा प्रारम्भ होकर अभयसागर धर्म सभा मण्डप पहुंची·····आचार्य श्री कनक सागर सूरीश्वर जी ने दीक्षार्थियों को ओघा प्रदान किया।·····दीक्षार्थी थे श्री मांगी लाल मेहता, श्रीमती मान कुंवर बहिन (पत्नि), श्री अनिल (पुत्र) तथा प्रमिला बहिन (पुत्री)।"

उपरोक्त समाचार पढ़ कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे क्या कारण उपस्थित हो गये जिनके चलते पूरे परिवार की वैराग्य भावना इतनी प्रबल हो गई कि सभी सदस्यों ने एक साथ जैनेश्वरी दीक्षा लेने का निर्णय लिया। हम आशा करते हैं कि उनकी वैराग्य

भावना के मूल में विषम आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियां या गृहस्थी की विषम अबूझ समस्याएं न रही होंगी जिनसे उकताकर या पलायन करके क्षणिक आवेश में उन्होंने ऐसा कदम उठाया हो। हम यह भी आशा करते हैं कि इस परिवार के सभी सदस्य अवश्य ही कुछ वर्षों से श्रावक के १२ व्रतों का पालन करते हुए संयम साधना करते रहे होंगे क्योंकि जैनेश्वरी दीक्षा (चाहे दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी—किसी भी आम्नाय की क्यों न हो) अन्य सम्प्रदायों की सन्यास दीक्षा की तुलना में कहीं अधिक कठोर संयम साधना की अपेक्षा रखती है जिसके लिए दीर्घ काल का पूर्वाभ्यास सामान्यतया आवश्यक होता है। अच्छा तो यह होता कि आचार्य सूरीश्वर जी ने इस परिवार के सदस्यों को जैनेश्वरी दीक्षा देने के पूर्व प्रतिमाधारी गृहत्यागी ब्रह्मचारियों के रूप में मुनि-साध्वी संघों में रखकर संयम साधना कराई होती। अपरिपक्व दीक्षा अतिचार और अनाचार की जननी होती है। ऐसी दीक्षाओं के दुष्परिणाम आज साध्वाचार में चहुं ओर आई गिरावट के रूप में प्रत्यक्ष देखने में आ रहे हैं जिनसे सम्पूर्ण श्री संघ की जग हंसाई होती है। अपरिपक्व युवा-युवतियों की मुनि-आर्यिका दीक्षा तो पूर्ण रूप से वर्जित होनी चाहिए। फिर भी इतनी अपेक्षा तो की ही जानी चाहिए कि दीक्षा प्रदाता गुरु देव इन नव दीक्षित साधु-साध्वियों को पृथक-पृथक अन्य साधु-साध्वियों के साथ विहार कराएं ताकि वे परिवार मोह पर विजय पा सकें।

दिगम्बर आम्नाय में भी कई ऐसे महामुनि एवं आर्यिका रत्न देखने में आए हैं जो अपनी मां, बहिन, भाई आदि को मुनि-आर्यिका दीक्षा ग्रहण कराने के उपरान्त भी या ग्रह त्यागी प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी बना कर अपने ही संघ में सदा अपने साथ ही रखते रहे हैं। एक आचार्य श्री एवं उनकी गृहस्थपर्याय की धर्मपत्नि आर्यिका दीक्षा लेकर आजीवन साथ-साथ ही रहे।

प्राचीन काल में (अब से लगभग २४०० वर्ष पूर्व) हुए एक स्थूलभद्र मुनि की कथा आती है कि उन्होंने अपनी गृहस्थावस्था

की प्रेमिका अनिंद्य सुन्दरी नगर-वधु कोशा के केलिगृह में चातुर्मास करके अपने गुरू से अभूतपूर्व कामजर्या होने के लिए समस्त मुनि संघ के समक्ष साधुवाद प्राप्त किया था। कदाचित् हमारे यह महा-मुनि एवं आर्यिकाएं अपने परिजनों को अपने संघ में अपने साथ रखकर परिजनों के मोह पर विजय पाने की साधना करते हैं।

वैराग्य भावना के विषय में एक कथा सुनी है। एक शिष्य ने अपने गुरू से पूछा–'गुरू जी, मैं क्या करूं जिससे मुझे संसार से पूर्ण विरक्ति हो जाय तथा मेरी वैराग्य भावना दृढ़ हो जाए। अभी तो चित्त कभी-कभी चंचल हो जाता है, परिजनों की याद भी सताने लगती है।" गुरू ने पूछा–"तेरा इस संसार में क्या-क्या है?" शिष्य ने उत्तर दिया–"गुरू जी मेरा पत्नि-पुत्र-पुत्रियों सहित भरा-पूरा परिवार, धन-धान्य, दास-दासियों से भरा भव्य महल है।" गुरू ने कहा–"तो जा रात्रि में उस महल में आग लगा आ ताकि सब कुछ जल कर भस्म हो जाए।" शिष्य की समझ में नहीं आया कि गुरू जी ने ऐसा कठोर अद्भुत उपाय क्यों बताया। गुरू ने समझाया कि जब संसार में तेरा कुछ रह ही नहीं जाएगा तभी तो संसार से तेरा मोह छूटेगा तथा वैराग्य दृढ़ होगा। ★

अभिनन्दन

नई दिल्ली में २२ अप्रैल को गांधीनाथा रंग जी जन मंगल प्रतिष्ठान द्वारा जैन दर्शन एवं जैन न्याय के प्रख्यात विद्वान ८५ वर्षीय डा० दरबारी लाल कोठिया को रु० ५१,०००/- के 'आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार' से सम्मानित किया गया और उन्हें 'न्यायसिन्धु' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

श्रीमती रूबी जैन, सहारनपुर, को 'शुभचन्द्राचार्यविरचित पाण्डव पुराण का समीक्षात्मक अध्ययन' पर मेरठ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

श्रीमती माया जैन, उदयपुर, को 'आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व एवं काव्यकला' पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

जैन साध्वी श्री मधुबाला को 'श्री रमेशमुनि का हिन्दी साहित्य में योगदान' विषय पर विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

हाल ही में घोषित वर्ष १९९५ की आई० ए० एस० परीक्षा परिणाम में मुम्बई की कु० मोना खंधार (जैन) ने सातवां तथा नानौता (सहारनपुर) के श्री पराग जैन ने ३४वां स्थान प्राप्त किया।

जलगांव के श्री सुरेश दादा जैन महाराष्ट्र सरकार में व्यापार एवं वाणिज्य मंत्री बनाये गये।

हाल ही में सम्पन्न लोकसभा चुनावों में ७ जैन धर्मावलम्बी भी सांसद निर्वाचित हुए। इनके नाम हैं—श्री एम० पी० वीरेन्द्र कुमार (केरल), श्री के० अवाडे (महाराष्ट्र), श्री धनंजय कुमार जैन, श्री गुमानमल लोढा (जस्टिस), श्री सतपाल जैन (हरियाणा) श्री सुन्दर सिंह भण्डारी और श्री राघव जी।

उपरोक्त सभी महानुभावों का **शोधादर्श** परिवार उनकी सफलता पर अभिनन्दन करता है और अपनी शुभकामना प्रेषित करता है। ★

समाचार विविधा

शिक्षा की प्राथमिकतायें

२ जून को के बी के प्रिमरोज अकाडेमी, चारबाग, लखनऊ में **शिक्षा की प्राथमिकतायें** विषय पर आयोजित सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए शिक्षा निदेशक, उ० प्र०, डा० लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय ने बताया कि शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य मानव के योग्य गुणों का विकास करके शिक्षार्थी को समग्र रूप से मनुष्य बनाने का है ताकि वह सामयिक परिस्थितियों और सामाजिक परिदृष्य के परिप्रेक्ष्य में स्वयं का सर्वांगीण विकास कर सके तथा अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्ततः मानव मात्र के हित में अपने दायित्वों का सम्यक्

रूप से निर्वहन कर सके। मोटे रूप से शिक्षा की दो प्राथमिकताएं व्यक्तिगत विकास और सामाजिक प्रासंगिकता, हैं। इन्हीं से जुड़ा है शिक्षा का रोजगारपरक या व्यवसायनिष्ठ होना। वैज्ञानिक विकास से इसका तादात्म्य बना रहना नितान्त आवश्यक है। कम्प्यूटर में प्रशिक्षण और इसके लिये तथा अन्यथा भी अंग्रेजी भाषा का सम्यक् ज्ञान होना अब आवश्यक होता जा रहा है। परन्तु अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा का समुचित ज्ञान और राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना तथा आत्म-सम्मान की अनुभूति सदा ही शिक्षा के आवश्यक अंग बने रहेंगे।

डा० (श्रीमती) अलका अग्रवाल ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा के ग्राह्य होने के लिये यह आवश्यक है कि अध्यापक वर्ग का आचरण अनुकरणीय हो और जो विद्यार्थी उनके सम्पर्क में आयें वे उन्हें गुरू का सम्मान दे सकें। शिक्षा एक दीर्घगामी कार्यक्रम है जो व्यक्ति को उसकी सामयिक अपेक्षाओं के अनुसार ढालने का एक सतत प्रयत्न है। अतः शिक्षा की पद्धति में जो भी सुधार किये जाएं उनमें शाश्वत जीवन मूल्यों की उपेक्षा न की जाय।

शिक्षा विभाग के पूर्वाधिकारी श्री नरेश चन्द्र जैन ने कहा कि शिक्षा की प्राथमिकतायें सुनिश्चित करते समय हमें बदलती हुई परिस्थितियों और उनके सन्दर्भ में जनता की अपेक्षाओं को ध्यान में रखना अभीष्ट है, तभी हम शिक्षा के अपने प्रयासों को उपयोगी बना सकेंगे।

डा० इन्दु भूषण जिन्दल ने अपने अनुभव से इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया कि अंग्रेजी माध्यम के क्रिश्चियन स्कूलों में हिन्दी की पूर्ण उपेक्षा की जाती है जिससे बच्चे की ग्रहण शक्ति और बोधशीलता प्रतिकूलतः प्रभावित होती है।

अकाडेमी परिषद के अध्यक्ष श्री अजित प्रसाद जैन ने बताया कि विगत ७५ वर्षों में उन्होंने भारत में शिक्षा के क्षेत्र में शासकीय स्तर पर और सामाजिक स्तर पर किये गये प्रयोगों को

निकट से देखा है। बराबर यह प्रयास रहे हैं कि शिक्षा को उपयोगी बनाया जाय और हमारी वर्तमान अपेक्षाओं के अनुरूप उसे व्यवस्थित किया जाय। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के दशकों में शिक्षा का तेजी से व्यवसायीकरण हुआ जिससे शिक्षा के मूल्य धीरे-धीरे तिरोहित होते गये, शिक्षक वर्ग का आर्थिक स्तर जैसे-जैसे उन्नत होता गया उनमें अर्थलोलुपता बढ़ती गई और शिक्षण के प्रति निष्ठा विगलित होती गई, तथा शिक्षार्थी अपने बड़ों का असंयत आचरण देख कर शिष्टाचार से विरत होते गये और अध्ययन के प्रति अध्यवसाय से उदासीन होते गये।

चर्चा का समापन करते हुए शिक्षा विभाग के भूतपूर्व विशेष सचिव डा० शशि कान्त ने बताया कि आज की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि शिक्षा के प्रति व्यवसायिक प्रवृत्ति को लगाम दी जाय और आज की आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में, व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को दृष्टिगत रखते हुए, तथा शाश्वत जीवन मूल्यों के प्रति सजग रहते हुए, शिक्षण संस्थाओं का निर्माण किया जाय। इस बात का ध्यान रखा जाय कि विद्यार्थी अधिक से अधिक संख्या में शीघ्र रोजगार पा सकने की क्षमता प्राप्त कर सकें। यदि अंग्रेजी माध्यम का स्कूल होने का दावा हम करते हैं तो वह मात्र नारा नहीं होना चाहिए वरन् इस बात की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए कि बच्चा विद्यालय परिसर में आने के बाद अंग्रेजी भाषा में सहज अभिव्यक्ति अर्जित कर सके। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों में अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति यथोचित सम्मान की भावना का पोषण हो।

जैन एवं बौद्ध धर्म में तन्त्र विषयक संगोष्ठी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, में १६ मार्च को **जैन एवं बौद्ध धर्म में तन्त्र** विषयक संगोष्ठी दो सत्रों में सम्पन्न हुई। 'जैन धर्म में तन्त्र' विषयक प्रथम सत्र की अध्यक्षता प्रो० देवराज ने की और उसमें विभिन्न विद्वानों के शोधपत्रों का वाचन हुआ। द्वितीय सत्र

की अध्यक्षता बौद्ध धर्म-दर्शन के विद्वान एवं तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान के कुलपति प्रो० रिंपोछे ने की ।

श्रुत-पंचमी

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी २२ मई को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, के शोध पुस्तकालय, चारबाग, लखनऊ में श्रुत पंचमी के उपलक्ष में धार्मिक गोष्ठी हुई । वयोवृद्ध विद्वान श्री अजित प्रसाद जैन ने श्रुत पंचमी के महत्व पर प्रकाश डाला और इस दिन को पुस्तकालयों के प्रारम्भ का दिवस भी बताया ।

अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद की प्रबन्धकारिणी समिति की बैठक

७ जुलाई को आचार्य सुशील आश्रम, नई दिल्ली, में अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद की प्रबन्धकारिणी समिति की बैठक समाज में व्याप्त शिथिलाचार, रूढ़ियों, कुरीतियों आदि को मिटाने तथा युवा एवं महिला वर्ग के उत्थान को लेकर साहू रमेश चन्द्र जैन की अध्यक्षता में हुई जिसमें देश के विभिन्न भागों से आये १५० से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया और समिति के जो सदस्य नहीं आ पाये उनसे प्राप्त सुझाव आदि पढ़े गये । बैठक का शुभारम्भ श्री ताराचन्द प्रेमी द्वारा मंगलाचरण और परिषद के उद्देश्यों पर प्रकाश डालने वाले वक्तव्य से हुआ । शिथिलाचार के सम्बन्ध में कड़ा रुख अपनाने, जिनवाणी हटाने वालों की तीव्र भर्त्सना करने, तथा जैन समाज को अल्पसंख्यक दर्जा दिलाने के सम्बन्ध में डा० शशि कान्त, लखनऊ, के विचार भी बैठक में पढ़े गये ।

वीर शासन जयन्ती

२८ जुलाई को गांधी भवन (प्रेक्षागार), लखनऊ में युवा जैन मिलन, लखनऊ द्वारा वीर शासन जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित कार्यक्रम का उद्घाटन नगर प्रमुख डा० एस० सी० राय ने किया । मुजफ्फरनगर के श्री डी० पी० कौशिक द्वारा प्रस्तुत नृत्य नाटिकाएं 'जीवन यही एक नाटक' और 'पार्श्वनाथ पर कमठ उपसर्ग' कार्यक्रम का विशेष आकर्षण थीं । भारतीय जैन मिलन के उपाध्यक्ष

श्री राजेन्द्र कुमार जैन ने वीर शासन जयन्ती के महत्व पर प्रकाश डाला ।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा ३१ जुलाई को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के शोध पुस्तकालय, चारबाग, लखनऊ में प्रातःकाल वीर शासन जयन्ती के उपलक्ष में धार्मिक गोष्ठी हुई । महावीराष्टक के सामूहिक पाठ से गोष्ठी प्रारम्भ हुई और पं० जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' तथा कवि पुष्पेन्दु (लखनऊ) के महावीर सन्देश के सामूहिक गान से उसका समापन हुआ । वयोवृद्ध विद्वान श्री अजित प्रसाद जैन ने वीर शासन जयन्ती के सम्बन्ध में विशद प्रकाश डाला ।

नशाबन्दी

हरयाणा सरकार ने राज्य में पूर्ण नशाबन्दी लागू की है । इसके लिए उसे बधाई !

बोलियों का नया प्रकार

सरधना (मेरठ) में रथयात्रा के अवसर पर इन्द्र आदि की बोलियां धन के आधार पर नहीं अपितु व्रत-नियम लेने के आधार पर बोली गई । उक्त समाज का यह कार्य अनुकरणीय है ।

जैन डायरेक्ट्री

जैन समाज-तीर्थ-श्रमण-विद्वान एवं प्रतिभावान व्यक्तियों आदि के बारे में **जैन डायरेक्ट्री (भारत एवं विदेश)** का प्रकाशन श्री अजित कुमार पाटनी द्वारा किया जा रहा है । इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु उनसे १८/१, महर्षि देवेन्द्र रोड, तृतीय तल, कमरा नं० २०, कलकत्ता-७०० ००७, पर सम्पर्क किया जा सकता है ।

'कैप्टन कुक' आटा सामिष

मद्रास से भारतीय शाकाहार कांग्रेस के प्रवक्ता श्री माणक चन्द्र नाहर ने खबर दी है कि 'कैप्टन कुक' गेहूँ के आटे में २५ प्रतिशत मत्स्य चूर्ण (मछली की हड्डियों का पाउडर) मिलाया जाता है । —**तीर्थंकर**, जुलाई १९९६, से साभार

पत्राचार अपभ्रंश सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम

पाँचवा सत्र १ जनवरी, १९९७ से आरम्भ होगा। हिन्दी एवं अन्य भाषाओं/विषयों के प्राध्यापक, अपभ्रंश-शोधार्थी एवं संस्थानों में कार्यरत विद्वान इसमें सम्मिलित हो सकेंगे। नियमावली एवं आवेदन पत्र दिनांक १५ सितम्बर, १९९६ तक अपभ्रंश साहित्य अकादमी कार्यालय (दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-३०२००४) से प्राप्त किये जा सकते हैं।

आभार

पचेवर के श्री तारा चन्द्र जैन अग्रवाल ने स्व० श्री पांचू लाल जैन की १२वीं पुण्य तिथि पर उत्सर्ग राशि में से ११ रु० **शोधादर्श** को भेंट किये।

इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की ८वीं पुण्य तिथि पर उत्सर्ग राशि में से उनके पुत्र-द्वय डा० शशि कान्त और श्री रमा कान्त जैन ने **शोधादर्श** को ५० रु० भेंट किये।

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श मार्च ९६ का अंक प्राप्त हुआ। बहुत सुन्दर प्रकाशन। सभी धर्मों के सन्दर्भ में आपने अपनी राय लिखी है। साथ ही जैन धर्म सम्बन्धी भी चर्चा की है। जैन धर्म के बारे में कुछ मेरे विचार और ही हैं :—

J JUSTICE
A AFFECTION
I INTROSPECTIVE
N NOBLE

As on date it is accepted principle that Jains are known because they are born in Jain Family. Actual Jain is not on account of birth in a Jain family which is just a co-incidence.

Actually Jain is the person who believes in Jainism in its true spirit.

Jains are known as SHARAVAK thereby SHARDAVAN (श्रद्धावान), VIVEKVAN (विवेकवान) and KRIYAVAN (क्रियावान).

Jains are supposed to be honest, happy, helpful and healthy citizens of a Nation, completely non violent, non communal at all times.

Jain respect non violence as worshipper of the same and believe in ANEKANTVAD—all aspects of a particular matter.

Jains are free from all kinds of vices, drinks, smoking etc.

—श्री नरेन्द्र कुमार जैन, देहरादून

आप सभी जिस लगन के साथ पत्रिका का सम्पादन श्री रमाकान्त जी के साथ मिलकर कर रहे हैं और जिस योग्यता से प्रबन्ध सम्पादक एवं प्रकाशक श्री अजित प्रसाद जी अपना कार्यभार पूरा कर रहे हैं और इस पत्रिका के मूल सम्पादक स्व० डॉ० ज्योति प्रसाद जी की ज्योति प्रकाशमान किए हुए हैं उसके लिए हम आपको हार्दिक बधाई एवं साधुवाद देते हैं।

—श्री सुबोध कुमार जैन, आरा

शोधादर्श मार्च १९९६ का अंक प्रथम बार पढ़ने में आया। पूरा अंक पढ़ा। पत्रिका में बिना किसी भेदभाव के जैन धर्म, वैदिक-हिन्दू धर्म, पारसी धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, सिक्ख धर्म के सम्बन्ध में जानकारी देकर अनुकरणीय कार्य किया गया है।

समाचार विमर्श "चमत्कार को नमस्कार" में निर्भीकता से तथ्यों का उल्लेख किया जाना सराहनीय है। पृष्ठ क्र०—११६ पर "दीक्षाएँ" इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण समाज को भावुकता का परित्याग कर देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार समझाईश देने की तीव्र आवश्यकता है।

—श्रीमती विमला जैन, अपर कल्याण आयुक्त, भोपाल

शोधादर्श-२८ प्राप्त हुआ। यह अंक बहुत ही informative तथा ज्ञानवर्द्धक है। इसमें कई विचारोत्तेजक मुद्दे भी उठाये गये हैं जिसका कोई स्पष्ट शास्त्रीय स्पष्टीकरण नहीं है। श्री अजित प्रसाद जी द्वारा प्रस्तुत 'चिन्तन-कण' में सभी मुद्दे विचारणीय हैं।

'समाचार-विमर्श' भी महत्वपूर्ण तथा सामयिक है। 'चमत्कार को नमस्कार' बीसवीं शताब्दी के अन्त में होना इस बात का द्योतक है कि अभी हमारा समाज बहुत अशिक्षित है।

श्री जौहरीमल पारख ने जैनों को अल्प संख्यक की सूची में सम्मिलित करने सम्बन्धी प्रकरण की चर्चा की है। मुझे तो अभी तक यह स्पष्ट नहीं हुआ कि यदि हम अल्प संख्यक सूची में आ गये तो उससे समाज का क्या लाभ होगा, और यदि अल्प संख्यक सूची में नहीं आये तो उससे क्या हानि होगी। आगरा की कई प्रमुख जैन शिक्षण संस्थाओं/स्कूलों के बारे में मैं बहुत समय से जानता हूँ। पिछले २०–३० वर्षों से वहाँ पार्टी-बाजी, मुकदमे बाजी तथा पारस्परिक कटुता के अलावा कुछ देखने को नहीं मिला। सभी स्कूलों में अजैन प्रिंसिपल तथा अध्यापक हैं। बहुत कम जैन अध्यापक हैं। जैन धर्म की शिक्षा किसी भी स्कूल में अब नहीं दी जाती है। स्कूलों की यह स्थिति उस समय से है जब जैन अल्प संख्यकों की सूची में थे। मैं समझता हूँ कि अन्य स्थानों पर भी अच्छी स्थिति नहीं है।

–डा० अनिल कुमार जैन,
उप निदेशक, आगार अध्ययन संस्थान, अहमदाबाद

अठ्ठाइसवाँ अंक भी अपनी पूर्वपरम्परा को सफलतापूर्वक आगे बढ़ा रहा है। अनेक अछूते विषयों का विवेचन बडा ही ज्ञानवर्द्धक एवं रुचिकर होता है।

–डा० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, वाराणसी

शोधादर्श आप बहुत परिश्रम और व्यय करके निकाल रहे हैं। मैटर का चुनाव शोध-परक और उसकी व्यवस्था भी शोध-सन्दर्भ पत्रिका के अनुरूप करने का प्रयास करके आपने स्वर्गीय डाक्टर

साहब के जीवन-व्रत का ही निर्वाह किया है। इस भीषण मँहगाई के बीच ऐसी पत्रिकाओं को चलाते जाना तपस्या से कम नहीं है। मेरी बधाई स्वीकार करें।

दिगम्बर मुनि-संस्था का जितना अवमूल्यन हुआ व हो रहा है, वह सचमुच जैन संस्कृति पर एक घोर उपसर्ग है। इतनी बड़ी संख्या में इतने अपात्रों के हाथ में मयूरपिच्छी इतिहास ने कभी देखी नहीं, जितना हमारी पीढ़ी को, दुर्भाग्यवश, देखना पड़ रही है। उससे भी बड़ा दुर्भाग्य है यह कि न तो हमारे आचार्यों/मुनियों का ध्यान उस गिरावट को रोकने की ओर है, और न ही समाज के वर्तमान कर्णधार उस दिशा में कुछ करने का साहस दिखा पा रहे हैं। ऐसा लगता है सब कान में तेल डालकर बैठे हैं। क्या आज समाज की किसी अखिल भारतीय संस्था के किसी नेता में इतना साहस नहीं है कि वह किसी एक मुनि को भी, नाम लेकर "अमुनि" घोषित कर सके ? क्या होगा हमारी आस्थाओं का सो तो भगवान ही जाने। आप कुछ निर्भीक होकर इस पर कलम चला रहे हैं, इसके लिये आने वाली पीढ़ी आपकी कृतज्ञ रहेगी।

—श्री नीरज जैन, सतना

शोधादर्श में काफी ज्ञानवर्द्धक लेख रहते हैं। हम सभी लोगों को बहुत अच्छी लगती है।

—श्रीमती समता जैन, आरा

यह पत्रिका जैन दर्शन के माध्यम से तापत्रय संतप्त मानव मस्तिष्क को नितान्त पावन शीतल अध्यात्म मेघ जल से सिक्त कर अनिर्वचनीय शान्ति प्रदान करती है।

इसके 'साहित्य सत्कार' स्तम्भ का स्पर्श करते ही काव्यरस-रसिकों की हृत्तन्त्री सहसा निनादित हो उठती है।

पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित शोध परक लेखों में जगमगाती जैन धर्म ज्योति सुधी पाठक जन की चिन्तन दृष्टि को बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

पत्रिका २८ में श्री जौहरीमल पारख द्वारा लिखित "विचार विन्दु : आत्मघाती मांग" नामक लेख नितान्त यथार्थपरक सामयिक व औचित्य पूर्ण है। वस्तुतः जैन धर्म है, जाति नहीं। निबन्धान्तर्गत लेखक का यह कथन "यदि इस देश में जैन भी सहायता दिये जाने लायक गरीब हैं, तो फिर धनवान कहे जाने वाला कौन बचेगा ?" क्या परोक्ष रूप से इस तथ्य की ओर संकेत नहीं करता कि वाचा अपरिग्रह का प्रबल समर्थक होते हुए भी जैन समाज मनसा परिग्रह का ही अनुयायी है।

–आचार्य शिवचन्द्र शर्मा, सहारनपुर

वस्तुतः **शोधादर्श** के माध्यम से आप सभी सच्चे जैन धर्म, समाज और साहित्य एवं सिद्धान्त की जो सेवा तथा संरक्षण कर रहे हैं वह अतुलनीय है। **शोधादर्श** के प्रत्येक लेख, टिप्पणी, सम्पादकीय समीक्षाओं आदि की बहुत गरिमा है समाज में। मेरे लिये तो इसका प्रत्येक अंक महत्वपूर्ण विशेषांक होता है।

–डा० फूल चन्द जैन प्रेमी, वाराणसी

इस अंक में विविध धर्मों की महिमा आप श्री ने दिया है। वह बहुत रोचक है और सर्वसामान्य वाचकों के लिए बहुत उपयोगी है। यह प्रयास उत्तम है। श्री अजित प्रसाद जी का लेख वाचनीय और पठनीय है। **शोधादर्श** के हैसियत से आप श्री श्रीजिन शासन के लिये अनमोल सेवा कर रहे हैं, उसके लिये धन्यवाद।

–श्री शांतिलाल के० शहा, सांगली

सम्पूर्ण पत्रिका को आद्योपांत पढ़ने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि आपकी यह पत्रिका जैन शोध एवं सामाजिक जागरण के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी भूमिका का सफल निर्वाह कर रही है। आदरणीय भाई श्री अजित प्रसाद जी के चिन्तन कण अग्नि के ऐसे स्फुल्लिग हैं जो अंधविश्वास और रूढ़ियों के कूड़ा-करकट को जलाने में पूर्णतया सक्षम हैं। कड़वे सच को

कहने का नैतिक साहस विरले ही व्यक्तियों में होता है। श्रद्धेय स्वर्गीय डाक्टर साहब के कर-कमलों से आरोपित एक लघु बीज आप सभी कौटुम्बिक सदस्यों के अथक श्रम से एक विशाल वटवृक्ष का रूप धारण कर चुका है—यह देखकर महती प्रसन्नता एवं आत्मिक सन्तोष की अनुभूति होती है।

—डा० (कु०) मालती जैन, मैनपुरी

वास्तव में पत्रिका के संचालन व प्रकाशन का कार्य बहुत कठिन और साहस तथा धैर्य का कार्य है क्योंकि यह श्रम साध्य के साथ-साथ धन साध्य भी है। आप ने निरन्तर रूप से इस पत्रिका का सफल संचालन और प्रकाशन किया है। इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों की उत्कृष्टता पढ़कर सन्तोष होता है। इसके लिये मैं आपको बधाई देता हूँ। वास्तव में ऐसी साहित्यिक पत्रिकाओं की समाज को बहुत आवश्यकता है। विशेषकर प्राकृत साहित्य की पत्रिकाओं की। भगवान महावीर स्वामी की तथा उनके अनुयायियों की देशनाएं प्राकृत में ही हैं जो उस समय की जनसाधारण की भाषा थी। पर्यावरण और जीव दया बहुत ही उपयोगी और सामयिक है। स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन के जैन धर्म सम्बन्धी शोध और धार्मिक योगदान का भी ज्ञान इस पत्रिका से प्राप्त हुआ।

—प्रो० (डा०) अंगने लाल
कुलपति, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

यों तो **शोधादर्श** के इस अंक की सभी रचनाएं स्तरीय हैं तथापि स्वनामधन्य स्व० ज्योति प्रसाद जैन की बन्धुत्व-विरासत लिए श्री अजित प्रसाद जैन द्वारा इस अंक में 'सम्पादकीय' के अन्तर्गत ऋषभदेव की आदिपुरुष होने की ऐतिहासिक प्रामाणिकता, 'चिन्तन कण' के अन्तर्गत पंचकल्याणकों तथा तीर्थंकरों के जन्म के अवसर पर आगमों में वर्णित रत्नवर्षा, छप्पन कुमारी देवांगनाओं तथा सुमेरु पर्वत पर तीर्थंकर-पूजा की वास्तविकता के प्रति शंकाओं और कतिपय अन्य प्रश्नों के समाधानों एवं 'समाचार विमर्श' के

अन्तर्गत चमत्कार को नमस्कार करने वाली बेबाक टिप्पणी उनके गहन अध्ययन और सम्यक् चिन्तन का सबल साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

'विचार बिन्दु' के अन्तर्गत जैनों के लिए अल्पसंख्यक वर्ग की माँग के विरोध में स्व० श्री जौहरीमल पारख के विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण और व्यवहारिक हैं।

–डा० ए० एल० श्रीवास्तव, इलाहाबाद

श्री अजित प्रसाद का सम्पादकीय–भगवान ऋषभदेव का संक्षिप्त किन्तु सम्पूर्ण परिचय तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था-इतिहास का सामान्य वर्णन पूर्णता से प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार चिन्तन कण शास्त्रोक्त अनेक मान्यताओं जो सामान्य जन को कपोल-कल्पित, असम्भव तथा असंगत सी प्रतीत होती हैं–का सुन्दर एवं उचित स्पष्टीकरण प्रदान करता है जिससे प्राचीन शास्त्रकारों के लेखन का मर्म समझ में आकर धार्मिक आस्था में आ रही शिथिलता दृढ़ होती है।

'सम्राट सम्प्रति' एवं 'ग्वालियर के जैन मन्दिरों की अनुपम भित्तिचित्र शैली'–दोनों लेख पुरातत्व प्रेमियों के लिए ज्ञानवर्धक हैं।

–श्री गुलाब चन्द्र जैन, विदिशा

शोधादर्श का २८वां अंक पढ़ा। सभी धर्मों पर संक्षिप्त और सूत्रात्मक चर्चा इस अंक की विशिष्ट सामग्री कही जा सकती है। विलुप्त साहित्य से लेकर पुस्तक समोक्षाओं तक विषय-वस्तु का संचयन, प्रसिद्ध लेखकों के विचार, अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का सामग्री समाहार, निश्चित ही सराहनीय और स्तरीय है।

–डा० सन्तोष कुमार तिवारी, सागर

शोधादर्श अंक २८ अभी देखने को मिला है। समाज में अभी सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएं निकल रही हैं, उन सबसे अलग इसमें अक्सर ही वह पढ़ने को और विचार करने को मिलता है जो अन्य पत्रिकाओं

में नहीं मिलता। आप जिस साहस के साथ अपनी बात कहते हैं, वैसा साहस अन्य सम्पादकों में क्यों नहीं है ?

–श्री महेन्द्र कुमार भारिल्ल, इटारसी

शोधादर्श के आलेख सारगर्भित, स्तरीय एवं सामयिक तो हैं ही, साथ ही उपादेय भी। अपनी समग्रता में यह पत्रिका एक दृष्टि सम्पन्न संग्रहणीय कृति है। एक गहरे आशावाद से भरपूर, स्वस्थ एवं सार्थक सत्साहस की गतिशील प्रवाहमान धारा जो जुझारू है, समाधान के लक्ष्य की और उन्मुख है तथा जैन साहित्य को समृद्धि की ओर ले जा रही है।

–डा० नीलम जैन, सहारनपुर

शोधादर्श का अंक २८ मिला। बन्धुवर डा० शशि कान्त ने सम्मेदशिखर के बारे में Pioneer में छपे लेख का प्रत्युत्तर ठीक दिया है। परन्तु ऐसा लगता है संघर्ष समिति चुप हो गई है और अब पटना हाईकोर्ट के फैसले पर सब कुछ टिक कर रह गया है, बहस कभी की समाप्त हो चुकी है। अब आन्दोलन का मुख मोड़कर नेता गण विकास की बातें करके गुमराह करने में जुट गये हैं। क्या ही अच्छा होता वे संघर्ष का रास्ता ही न अपनाते।

आपका विचार है कि पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर फणावली बनाना और पूजा करना उचित नहीं है। मैं इस विचार से सहमत हूँ। इसी प्रकार तपोलग्न बाहुबली की पूजा भी ठीक नहीं है किन्तु इनको अपवाद मानकर ही चलना उचित है। केवलज्ञान से पूर्व की अवस्था के पूजन का यदि हम समर्थन करें तो फिर उनको क्या कह सकते हैं जो भगवान की प्रतिमा पर आभूषण चढ़ाकर पूजन करते हैं।

–जस्टिस एम० एल० जैन, नई दिल्ली

२८वें अंक में सारे के सारे शोधपूर्ण लेख हैं। जो व्यक्ति शोधात्मक विषय पर जानकारी करना चाहते हैं उनके लिये यह

अत्यन्त उपयोगी है। इसमें लेख लिखने वाले जैनी मात्र नहीं हैं बल्कि अजैन भी हैं। जैसे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख आदि। सभी लोग अपने-अपने मन्तव्य के अनुसार विषय विवेचन कर अच्छा प्रकाश डाले हैं। यह बात तारीफ की है।

सम्पादकीय के रूप में श्री अजित प्रसाद जैन का प्रथम इतिहास पुरुष नाम का लेख पढ़ने और समझने लायक है।

डा० ज्योति प्रसाद जी जैन का 'जैन धर्म' लेख जैन धर्म की छाप लगाता है। यह लेख अतीव सुन्दर एवं शोधपूर्ण है। पढ़ने एवं समझने लायक है।

सारे के सारे लेख शोधात्मक होने के कारण इसका महत्व अद्वितीय है। **शोधादर्श** हर तरह से पठनीय एवं मननीय है। पौराणिक विषयों की अपेक्षा ऐतिहासिकता को लेकर शोधात्मक रूप में जो-जो लेख लिखे गये हैं उसका महत्व अकथनीय है।

—पं० मल्लिनाथ जैन शास्त्री, मद्रास

शोधादर्श पत्रिका प्राप्त हुई। एक ही बैठक में पूरी आद्योपान्त पत्रिका पढ़े बिना सन्तोष नहीं हुआ। मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि कोई ऐसा ग्रन्थ/ऐसी पत्रिका प्रकाशित हो, जिसमें विभिन्न धर्मों के मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन, उसी धर्म के प्रबुद्ध, अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखा हुआ हो। आज इस पत्रिका ने मेरी जिज्ञासा एवं इच्छा की पूर्ति की। इसके अतिरिक्त डा० कृष्णपाल त्रिपाठी, श्री वेद प्रकाश गर्ग, श्री अजित प्रसाद जैन, राजीव कान्त जैन आदि सभी विद्वानों की रचनाएं सुरूचि पूर्ण, ज्ञानवर्धक, उत्कृष्ट हैं। आपकी सभी सामग्री संदर्भ सहित प्रामाणिक और उपयोगी है। भविष्य में यह पत्रिका अवश्य ही "मील का पत्थर"—सिद्ध होगी। अनेक शोधार्थियों को अमूल्य सामग्री एक ही स्थान पर उपलब्ध हो सकेगी।

—डा० श्रीमती रमा जैन, छतरपुर

शोधादर्श-२८ प्राप्त हुआ । पढ़कर बहुत खुशी हुई । सभी लेख ज्ञानमूलक, चिन्तनवर्धक होते हैं ।

–श्रीमती सुधा शेठ, अगास

श्रम-साध्य, विश्वप्रबोध, विविध दर्शन ज्ञातव्यों से संभूतिरूप **शोधादर्श** मुझे रुचिकर विषय प्रदान करती है ।

–ब्र० अजित विवित्सु, ललितपुर

शोधादर्श बराबर मिल रहा है। इसमें सभी रचनाएं, टिप्पणियाँ, आदि पढ़कर कुछ सोचने को विचारने को बाध्य होना पड़ता है । मैं समझता हूँ कि किसी भी पत्रिका की सफलता की यही कसौटी है ।

–डा०महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद